के रूप में कम और हाड़–मांस के बने एक साधारण मनुष्य के रूप में अधिक प्रस्तुत करते हैं। पशु–पक्षियों के साथ 'के' के संबंध वाली कहानियों ने, उनके प्रति 'के' के अनूठे, अगाध प्रेम ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया। मुझे खुशी है कि आपने स्कूलों से संबंधित उनके दो लेख शामिल किए हैं, जो बहुत ही स्पष्ट और प्रेरणाप्रद हैं।

हैरी आयर्स, लंदन के
फाइनैंशियल टाइम्स के पत्रकार

जब मैं उनके साथ रहता था तब मेरा इस बात पर विशेष ध्यान गया था कि उनकी बौद्धिकता एक उपकरण की तरह थी जिसे वह पूरी शिद्दत से इस्तेमाल करते थे और फिर दैनिक जीवन के दौरान उसे अलग रख दिया करते थे; उनकी सामान्य उपस्थिति एक बहुत ही सतर्क बच्चे की तरह थी जो जवाब देने के लिए तत्पर एवं कौतूहल और प्रेम से भरा हुआ था। इसी वजह से मुझे आपकी यह पुस्तक बहुत ही महत्त्वपूर्ण लगती है क्योंकि यह 'के' की असाधारण मनुष्यता की साक्षी है, जिससे परिचय का सौभाग्य बहुत ही कम लोगों को प्राप्त हुआ। और जिस बारे में 'के' बात कर रहे थे, उनकी यही मनुष्यता उसकी जीती–जागती मिसाल भी है। मुझे हमेशा ही इस बात का अफसोस रहता था कि उनकी जनछवि एक अत्यंत गंभीर व्यक्ति की सी थी।

बिल क्विन सन् 1940 से ही कृष्ण जी से
परिचित थे और ओहाइ में रहते थे।

अपने जीवन काल में ही कृष्णमूर्ति अपने साथ काम करने वाले लोगों से अक्सर यह पूछा करते थे कि "जब 'के' नहीं होंगे तब आप उनकी शिक्षाओं की सुगंध को कैसे फैलाएंगे? "द ब्यूटी ऑफ माउंटेन" की उपयोगिताओं में से एक है उस परिमल या सुगंध को सहजतापूर्वक फैलाना। यह एक आडंबरहीन कथ्य है... जो कभी बड़ा ही मार्मिक और कभी विनोदपूर्ण हो जाता है, और कृष्ण जी के विलक्षण गुणों के प्रति गहरा प्रशंसाभाव रखते हुए भी लेखक व्यक्ति–पूजा या पंथवाद की अतिशयताओं से कथ्य को बचा पाने में समर्थ रहा है।

मैरी कैडोगन,
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लि. की ट्रस्टी

पीछे : दिसंबर 1984 में ऋशिवैली में 'के' के साथ मेरी अंतिम सैरों में से एक।

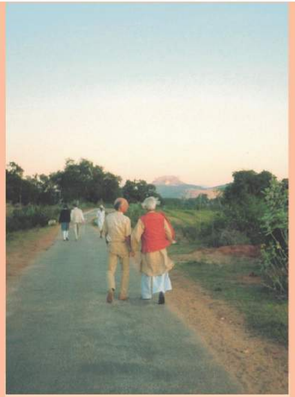

जिद्दू कृष्णमूर्ति या 'के' जैसा कि वह स्वयं को कहा करते थे, की ये स्मृतियां उनके जीवन के अंतिम तीन वर्षों की हैं जब मेरा उनसे मित्रवत् लगातार मिलना–जुलना होता रहा।

अधिकांश लोगों का 'के' से परिचय उनकी पुस्तकों, टेपों या उनकी वार्ताओं में भाग लेने तक सीमित है। बहुतेरे अवसरों पर 'के' ने स्वयं ही कहा है कि महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नहीं बल्कि उसका कथन है। इसके बावजूद मैं बहुत से ऐसे लोगों से मिला हूं जिनकी तीव्र जिज्ञासा यह जानने की रही है कि 'के' अपने प्रतिदिन के जीवन को कैसे जिया करते थे। इसीलिए मैं जितने मुझे याद हैं उतने विवरण यहां प्रस्तुत कर रहा हूं, कुछ ऐसे भी जो शायद उतने महत्त्वपूर्ण न लगें, किंतु मैं उन्हें यहां यह सोच कर शामिल कर रहा हूं कि शायद वे दर्शा सकें कि यह अद्भुत व्यक्ति वाकई अपनी 'शिक्षाओं' को जीता भी था।

पर्वत का सौंदर्य
जे. कृष्णमूर्ति के संस्मरण
फ्रीडरिश ग्रोहे

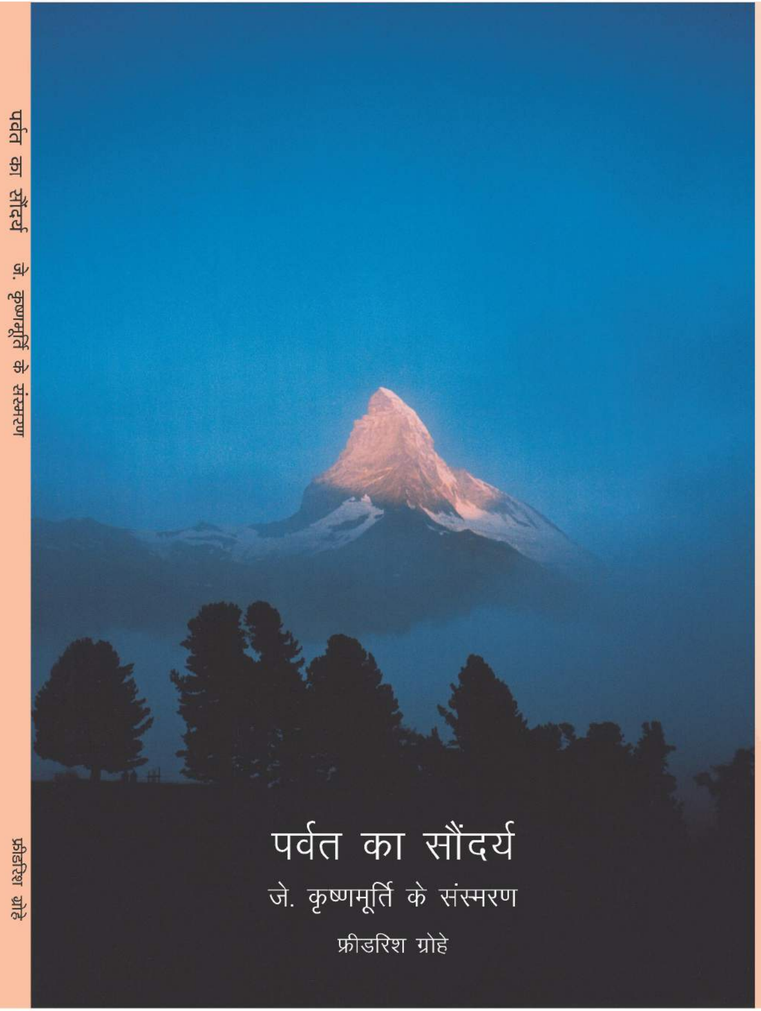

पूर्व अंग्रेज़ी संस्करणों पर टिप्पणियां :

इस पुस्तक द्वारा कृष्णजी का एक हृदयस्पर्शी और आत्मीय व्यक्तिचित्र उभर कर सामने आता है, जो उन लोगों के लिए बहुत ही उपयोगी और दिलचस्प सिद्ध होगा जिन्हें कृष्णजी को करीब से जानने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। और वे लोग जो उन्हें करीब से जान पाए थे, उन्हें यह पुस्तक कुछ ऐसी झलकें प्रदान करती है जो हमें अमूल्य शिक्षाएं देने वाले उस अद्भुत व्यक्ति की मानवीय विशेषताओं की याद दिलाती हैं।

स्टूआर्ट होल्लोएड, 'कृष्णमूर्ति–
द मैन, द मिस्ट्री एंड द मैसेज' के लेखक

मुझे आपके ये संस्मरण बेहद पसंद आए और मुझे लगता है कि आपने वाकई लोगों तक जीवन और जीने की कला के प्रति एक गहरा और स्नेहमय एहसास पहुंचाया है—वही एहसास, जो 'के' के संग–साथ रहने में अंतर्निहित है।

डॉ. डेविड शाएनबैर्ग, जिनकी कृष्णमूर्ति व डेविड बोह्म
के साथ हुई बातचीत टेप, डीवीडी और 'द ट्रांसफोर्मेशन ऑफ
मैन' नामक पुस्तक में उपलब्ध है।

मैं आपकी सुंदर फोटोग्राफी से बहुत अधिक प्रभावित हुआ—कितनी बारीकी और ध्यान से ली गई हैं ये तस्वीरें। जैसा कि आपने व्यक्त किया है, मुझे भी कृष्णमूर्ति "वास्तव में बहुत ही संकोची स्वभाव के" लगे। संभवतः इस लक्षण और स्व के बंधन से मुक्ति में कोई सक्रिय संबंध ज़रूर है।

डॉ. ऐलेन डब्ल्यू. ऐंडर्सन, कृष्णमूर्ति
से साथ हुई इनकी वार्ताएं टेप, डीवीडी और 'अ होल्ली डिफ्रेंट
वे ऑफ लिविंग' नामक पुस्तक में उपलब्ध हैं।

मुझे लगता है कि आपके संस्मरण 'के' के मानवीय पहलू को अन्य सभी ऐसे प्रयासों से, जो मैंने पढ़े हैं, ज़्यादा बेहतर दर्शाते हैं... वह विनोदी स्वभाव, वह सहजता, उनके व्यक्तित्व के वह व्यावहारिकता और सतर्कता वाले पक्ष... और मैत्रीभाव और स्नेहपूर्वक व्यवहार की उनकी प्रतिभा, यह सभी उन्हें उस हतप्रभ कर देने वाले, अव्यक्तिगत "वक्ता"

सामने : स्विट्ज़रलैंड में त्ज़ेरमाट्ट के ऊपर रिफेलऑल्प से दिखाई पड़ती मशहूर माट्टरहॉर्न, अनेक पहाड़ियों में से एक जिन पर मैं चढ़कर गया।

पर्वत का सौंदर्य · जे. कृष्णमूर्ति के संस्मरण

पर्वत का सौंदर्य

जे. कृष्णमूर्ति के संस्मरण

फ्रीडरिश ग्रोहे

इस पुस्तक में कृष्णमूर्ति के निम्नलिखित उद्धरण सम्मिलित हैं :

क्वेश्चंस एंड आंसर्ज़ पुस्तक से उद्धृत
'क्या मैं आपकी शिक्षाओं के बारे में बात कर सकता हूँ?'

'ब्रॉकवुड का वर्तमान और भविष्य'

'ओक ग्रोव स्कूल का उद्देश्य'

ऑन लिविंग एंड डाइंग (जीवन और मृत्यु) से उद्धृत
'तटस्थता व समझ'

लैटर्ज़ टू द स्कूल्ज़ (स्कूलों के नाम पत्र), खंड 1 से उद्धृत
'छोटे बच्चों की शिक्षा'

ऑन लिविंग एंड डाइंग (जीवन और मृत्यु) से उद्धृत
'एक अद्‌भुत रिक्तता से भरा मन'

'कृष्णमूर्ति टू हिमसेल्फ' से उद्धृत
'यह पृथ्वी हमारी है, केवल आपकी या केवल मेरी नहीं'

©1991 Friedrich Grohe
5th Edition in English - 2006
Photographs were taken by Friedrich Grohe
unless stated otherwise
www.fgrohephotos.com.
Design: Brandt-Zeichen, Rheinbach, Germany

Parvat ka Saundarya

J. Krishnamurti ke Sansmaran

Hindi translation of
The Beauty of the Mountain · Memories of J. Krishnamurti
By Friedrich Grohe

Translators

Bhumika Chawla • Anand Abhay

For the Hindi translation

© 2011 Rajghat Education Centre
Krishnamurti Foundation India
Rajghat Fort, Varanasi-221001
email : tpcrajghat@gmail.com
www.j-krishnamurti.org

Printer : Sattanam Printers, Varanasi

₹ : 100.00

विषय सूची

आभार vi

प्राक्कथन vii

'के' : 'क्या मैं आपकी शिक्षाओं के बारे में बात कर सकता हूँ?' viii

भूमिका x

'के' : ब्रॉकवुड का वर्तमान और भविष्य xii

'के' के साथ हुईं शुरूआती मुलाकातें 1

बुशियौं में भेंट 10

ओहाइ 14

'के' : ओक ग्रोव स्कूल का उद्देश्य 16

ब्रॉकवुड पार्क 22

ज़ानेन, श्योनरीड और रूझमों 35

भारत की अंतिम यात्राएँ 44

'के' : तटस्थता व समझ 44

'के' : छोटे बच्चों की शिक्षा 58

ओहाइ में वापसी 61

'के' : एक अद्‌भुत रिक्तता से भरा मन 63

पुनश्च 66

'के' : यह पृथ्वी हमारी है, केवल आपकी या केवल मेरी नहीं 68

परिशिष्ट 70

---

* सूचना के स्तर पर हुई तबदीली को यथासंभव इस हिंदी संस्करण 2011 में शामिल कर लिया गया है। (हिंदी संपादक)

आभार

मैं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड व कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका के प्रति आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने मुझे कृष्णमूर्ति के लेखों–व्याख्यानों एवं कृष्णमूर्ति से संबंधित रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

'भारत की अंतिम यात्राएँ' अध्याय का पूर्व आलेख मैरी लट्यंस द्वारा लिखित पुस्तक 'द ओपन डोर' के लिए लिखा गया था। एवलिन ब्लाउ की पुस्तक 'कृष्णमूर्ति : 100 यिअर्स' में भी यह लेख सम्मिलित किया गया था।

प्रेमभाव से किए गए इस परिश्रम में कई मित्रों ने अनगिनत रूप से सहायता की, और मैं उनका धन्यवाद करता हूँ। मैं निम्नलिखित व्यक्तियों का उनके योगदान व सहयोग के लिए विशेष रूप से आभारी हूँ : मिशाएल क्रोहनेन, जिन्होंने आरंभ में जर्मन में लिखी गई पांडुलिपि के अधिकतर हिस्से का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया और 'के' से लंबे अरसे तक परिचित होने के कारण इस पुस्तक की रचना के लिए उनके विचारों का योगदान अत्यंत उपयोगी रहा। मैरी कैडोगन और स्वर्गीय मैरी लट्यंस, जिन्होंने पांडुलिपि की ध्यानपूर्वक जांच के दौरान अपने बहुमूल्य सुझाव दिये। निक शॉर्ट, जिन्होंने इस पुस्तक के पहले संस्करण का संपादन किया। निक शॉर्ट और क्लाउडिया हैर्र, जिन्होंने पुस्तक के [मूल अंग्रेज़ी में छपे] चौथे संस्करण का संपादन किया। और युर्गन ब्रांड्ट, जिन्होंने पुस्तक के प्रत्येक संस्करण के लिए डिज़ाइनरों और मुद्रकों से संपर्क किया।

प्रिय पाठक

इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा इस बात से मिली कि जो लोग कृष्णमूर्ति के साथ कार्य करते थे, जैसे कि ट्रस्टीज़, उनसे 'के' पूछा करते थे कि क्या वे उस सुगंध को, उस अनुभूति को औरों को बयां कर सकते हैं जिसका एहसास 'के' के आस–पास रहने से उन्हें हुआ था। साथ ही, वह यह कदापि नहीं चाहते थे कि कोई उनके व्यक्तित्व मात्र की व्याख्या में उलझ कर रह जाए, बल्कि वह चाहते थे कि हम अपनी ऊर्जाओं को स्वयं की खोज में लगाएं। इस पुस्तक में कृष्णमूर्ति के कुछ ऐसे कथन व उद्धरण भी सम्मिलित हैं जो साधारणतः कहीं और पढ़ने को नहीं मिलते। ये पाठकों के लिए दिलचस्प और शायद उपयोगी हो सकते हैं, और इन कथनों और उद्धरणों को एक पुस्तक में संगृहीत करना मेरे लिए एक और प्रेरणास्रोत था।

मेरे एक मित्र ने मुझसे एक बार पूछा कि शिक्षाओं के किस पहलू ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया था। कुछ देर विचार करने के बाद मुझे एहसास हुआ कि कृष्णमूर्ति ने एक वार्ता के दौरान कुछ कहा था और वही बात उन्होंने डेविड बोह्म के साथ हुई एक बातचीत में भी कही थी (जिसे 'द एंडिंग ऑफ टाइम' में सम्मिलित किया गया), जिसने मुझे अत्यंत प्रभावित किया था : *प्रेम का कोई कारण, कोई हेतु नहीं होता*।

अब जब लोग मुझसे पूछते हैं कि कृष्णमूर्ति किस प्रकार के व्यक्ति थे तो सबसे पहले मैं उन्हें यह उत्तर देता हूँ कि वह प्रेम और स्नेह से परिपूर्ण थे। मुझे उम्मीद है कि यह पुस्तक, जिसे आप पढ़ रहे हैं, वही जज़्बा, वही मधुरता आप तक संप्रेषित कर पाएगी।

'क्वेश्चंस एंड आंसर्ज़' से लिया गया निम्नलिखित उद्धरण इस पुस्तक के शीर्षक 'द ब्यूटी ऑफ द माउंटेन' **(पर्वत का सौंदर्य)** का स्रोत है।

फ्रीडरिश ग्रोहे
नवंबर 2005

रूझमों, स्विट्ज़रलैंड में
स्थित रूबली,
विदेमानेत्त का दृश्य

क्या मैं आपकी शिक्षाओं के बारे में बात कर सकता हूँ?

प्रश्न :

इन मुलाकातों के दौरान हमने जो बातचीत की है वह मुझे समझ में आती है, बौद्धिक स्तर पर ही सही। मुझे लगता है कि उन बातों में सच्चाई है, एक गहरा अर्थ है। अब जब मैं अपने देश वापस जा रहा हूँ तो क्या मैं अपने मित्रों से आपकी शिक्षाओं के विषय में बात कर सकता हूँ? या, चूँकि मैं अभी भी एक विखंडित, आंतरिक रूप से विभाजित मनुष्य हूँ, इन शिक्षाओं के बारे में बात करके मैं और अधिक विभ्रम, उलझन ही पैदा करूँगा, नुकसान पहुँचाऊँगा?

कृष्णमूर्ति :

पंडितों–पादरियों, गुरुओं–महात्माओं के दिए गए सभी उपदेशों की अभिव्यक्ति आंतरिक विभाजनों से भरे मनुष्यों द्वारा ही होती है। हालाँकि वे यह कहा करते हैं, ''हम तो इस सब से ऊपर उठे हैं'', फिर भी हैं वे विखंडित मनुष्य ही। और प्रश्नकर्ता का कहना है : आपने

जो कहा है वह कुछ हद तक मेरी समझ में आया है, पूरी तरह से नहीं, पर थोड़ा बहुत ज़रूर; मुझमें वह बुनियादी बदलाव नहीं आया है। जो मेरी समझ में आया है मैं औरों को केवल वही बतलाने की बात कर रहा हूँ। मैं यह नहीं कह रहा कि मुझे पूरी तरह सब समझ आ गया है, मैंने अभी तक बस उसका एक अंश ही समझा है। मुझे मालूम है कि यह समझ पूर्ण नहीं, खंडित है; मैं इन शिक्षाओं की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ, मैं तो बस वही निवेदन कर रहा हूँ जो मैंने समझा है। हाँ; तो ऐसा करने में बुराई क्या है? परंतु यदि आप कहते हैं कि "मेरी तो इन सब बातों पर पूरी पकड़ है, मुझे पूर्णतया सब कुछ समझ आ गया है, और अब मैं आपको बताने वाला हूँ कि ये शिक्षाएँ क्या हैं", तब आप एक ऑथोरिटी, एक शास्ता बन जाते हैं—एक भाष्यकार; यह रवैया खतरनाक है, ऐसा व्यक्ति औरों को भ्रष्ट करता है। किंतु यदि मैंने कुछ ऐसा देखा है जो सत्य है, मैं किसी धोखे में नहीं हूँ; वह सत्य है और इसमें एक तरह का स्नेह है, प्रेम है, करुणा का भाव है; और मैं इसे तहेदिल से महसूस करता हूँ—तो ज़ाहिर है कि मैं औरों से इसका ज़िक्र किए बिना नहीं रह सकता, और यह कहना कि मैं ऐसा नहीं करूँगा मूर्खता होगी। लेकिन मैं अपने मित्रों को आगाह कर देता हूँ; मैं कहता हूँ, "देखिए, चौकस रहिए, मुझे किसी मंच पर मत बिठाइए।" वक्ता किसी ऊँचे आसन पर नहीं है। यह मंच, यह प्लेटफॉर्म तो मात्र सुविधा के लिए है; इससे वक्ता को किसी प्रकार का प्रभुत्व अथवा अधिकार नहीं मिल जाता। किंतु जैसा कि इस संसार का चलन है, मनुष्य सदैव किसी न किसी खूंटे से बंधे ही रहते हैं—चाहे वह कोई विश्वास हो या कोई इन्सान, कोई विचार, कोई भ्रम या कोई सिद्धांत—और इसलिए वे भ्रष्ट हैं; और जब भ्रष्ट मनुष्य भाषण देता है, तो हम, जो कि स्वयं भी कुछ हद तक भ्रष्ट हैं, भीड़ में शामिल हो जाते हैं।

इन पहाड़ियों, इस नदी की सुंदरता को देख कर, ताज़ी सुबह की अपार शांति को अनुभव कर, इन पर्वतों की आकृति को, इन वादियों, इन सायों, और किस तरह सब कुछ सामंजस्य में है, लय में है यह देख कर शायद आपके भीतर खुद–ब–खुद उठेगा कि आप अपने मित्र को लिखें, "यहाँ आओ तो, तुम्हें एक खूबसूरत नज़ारा दिखाएं!" और तब आप अपने बारे में नहीं सोच रहे। आपका सरोकार सिर्फ इस पर्वत के सौंदर्य से है ।

'क्वेश्चंस एंड आंसर्ज', पृ. 63–64 से उद्धृत
© 1982 कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड

इन संस्मरणों के माध्यम से मैं अपने मित्रों को, तथा और जो कोई भी इसमें रुचि रखता हो, उसे *पर्वत का सौंदर्य* दिखाना चाहूँगा।

भूमिका

सत्तर वर्षों से अधिक की कालावधि में कृष्णमूर्ति ने कई देशों में हज़ारों की संख्या में लोगों को संबोधित किया फिर भी उनकी बातों में शब्दों का अनावश्यक आधिक्य कहीं नज़र नहीं आता। उनके कथन साफ और सुस्पष्ट होते थे, और उनकी उपस्थिति गरिमामय थी, वह अपने बाह्य रूप का भी पूरा ख़याल रखा करते थे। बुनियादी तौर पर वह बहुत ही संकोची, या जैसा कि कभी–कभार वह स्वयं कहते, शर्मीले स्वभाव के व्यक्ति थे। फिर भी, जो कोई भी उनसे बातचीत करता, कोई प्रश्न उठाता, वह पूरे ध्यान से उनकी बात सुनते, सभी पहलुओं और बारीकियों पर पूरी रुचि के साथ ग़ौर करते। लोगों के प्रति उनका प्रेम गहरा था, और कोई भी उनसे आकर मिल सकता था।

1983 से—अर्थात जब मेरा पहले–पहल कृष्णमूर्ति से परिचय हुआ—मैं बाकायदा कृष्णमूर्ति के संपर्क में रहा। मैं कई बार उनके साथ सैर पर जाया करता था; भारत की उनकी अंतिम यात्रा पर भी मैं उनके साथ था। हमारी नियमित रूप से भेंट हो जाया करती थी—ब्रॉकवुड पार्क इंग्लैंड में, ज़ानेन स्विट्ज़रलैंड में और ओहाइ कैलीफोर्निया में। ब्रॉकवुड पार्क में उन्होंने मेरे रहने के लिए वेस्ट विंग में एक कमरे का प्रबंध किया था; यह स्कूल का वह भाग था जहाँ वह स्वयं रुका करते थे।

1969 में ब्रॉकवुड की स्थापना से लेकर हर वर्ष कृष्णमूर्ति लगभग चार महीने वहीं बिताते। मेरी नज़र में ब्रॉकवुड कृष्णमूर्ति की विरासत का एक अहम हिस्सा है, इस संदर्भ में—और इसलिए भी कि वहाँ बड़ों के लिए एक अध्ययन केंद्र शुरू करने की कृष्णमूर्ति की दिली चाह थी—मैं उनका एक प्रकाशित लेख यहाँ शामिल करना चाहता हूँ जिसमें उन्होंने ब्रॉकवुड की वर्तमान और भविष्य में क्या महत्ता है और उसके संरक्षण व देखभाल में फाउंडेशन की क्या भूमिका होनी चाहिये इस पर चर्चा की है। अतः इसमें यह भी निहित है कि सभी फाउंडेशनों की अपनी–अपनी ज़िम्मेदारियों के सिलसिले में क्या भूमिका है।

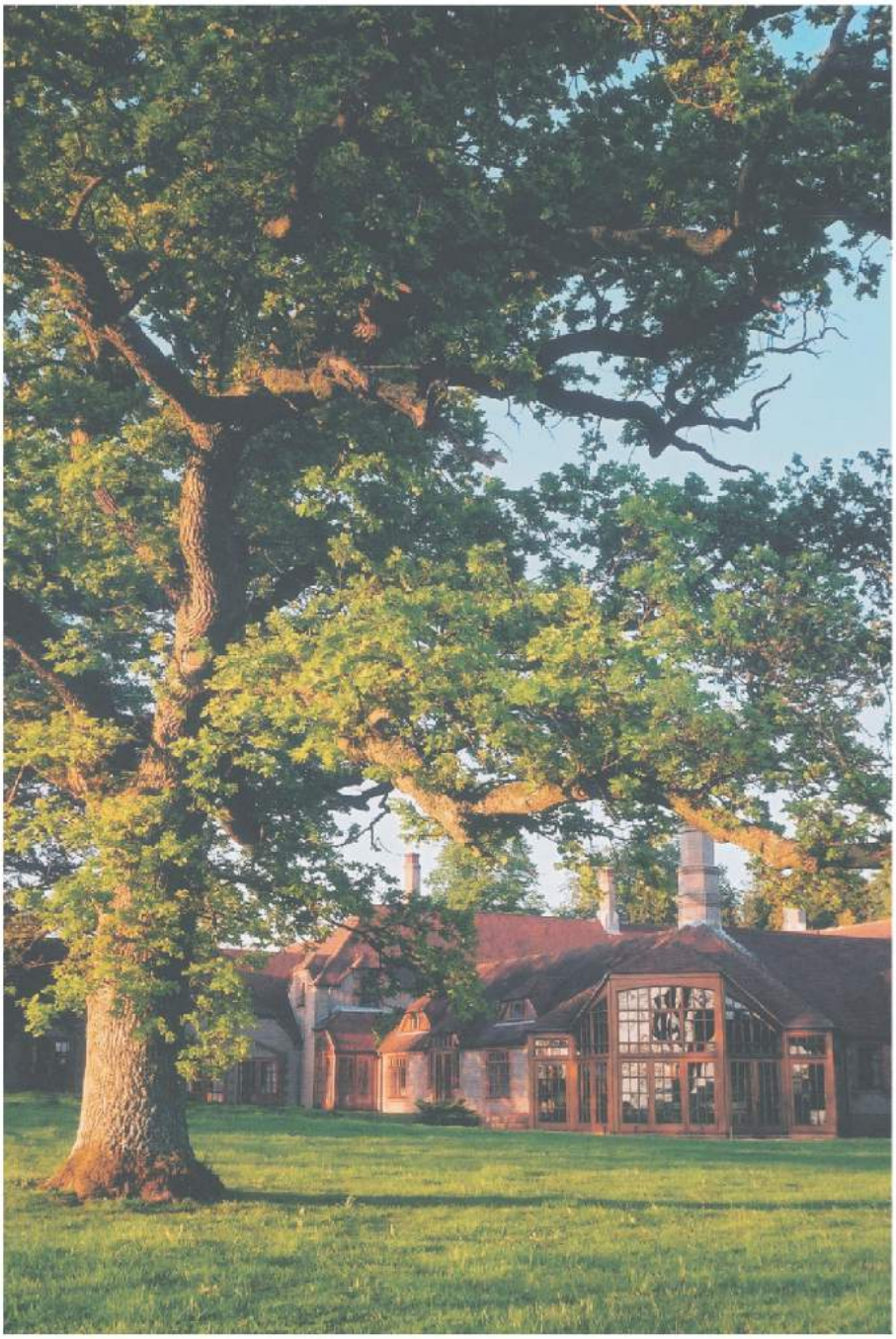

ब्रॉकवुड पार्क, हैंपशायर, इंग्लैंड में स्थित कृष्णमूर्ति सेंटर

ब्रॉकवुड का वर्तमान और भविष्य

चौदह वर्षों से ब्रॉकवुड एक विद्यालय के तौर पर चल रहा है। इसकी शुरुआत बहुत कठिनाइयों भरी थी–धन का अभाव वगैरह, और हम सब ने मिल कर इसे उस परिस्थिति से उबारने और इस मुक़ाम तक पहुँचाने में मदद की। यहाँ हर वर्ष कई समारोहों, सेमिनारों और ऑडियो–वीडियो रिकार्डिंग संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन होता रहा है। अब हम एक ऐसे मुक़ाम पर आ पहुँचे हैं जहाँ हमें न केवल यह जाँच करनी है कि हम क्या कर रहे हैं, बल्कि ब्रॉकवुड को मात्र एक विद्यालय से कुछ अधिक बनाने की दिशा में भी कार्य करना है। यूरोप में यही एक केंद्र है जो इन—बुनियादी तौर पर धार्मिक—शिक्षाओं को दर्शाता है। हालाँकि पिछले बाईस सालों में हम ज़ानेन में एक महीने या उससे अधिक समय के लिए मिलते रहे हैं, फिर भी ब्रॉकवुड वह जगह है जिसे 'के' अपना कहीं अधिक समय और ऊर्जा देते रहे हैं। ब्रॉकवुड एक बहुत ही प्रतिष्ठित स्कूल है, और श्रीमती डौरथी सिमौन्स ने बहुत जोश व उत्साह के साथ यहाँ कार्य किया है। इस स्कूल को चलाने और सफल बनाने में हम सभी ने तमाम विषम आर्थिक व मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों में अपना पूरा योगदान दिया है।

अब हमें ब्रॉकवुड को एक विद्यालय से कहीं अधिक बनाना है। इसकी परिकल्पना एक ऐसे केंद्र के रूप में है जहाँ शिक्षाओं में गहरी रुचि रखने वाले आकर रहें और अध्ययन करें। पुराने समय में आश्रम, अर्थात एकांत आश्रयस्थल, ऐसी जगह हुआ करते थे जहाँ लोग अपनी ऊर्जा को एकत्रित करने आते, जीवन के धार्मिक पहलुओं की जाँच–पड़ताल करते, उनका गहराई से अध्ययन करते। आधुनिक काल में इस तरह की जगहों में सामान्यतः कोई न कोई मार्गदर्शक, गुरु, महंत या प्रधान होता है जो मार्ग दिखाता है, व्याख्या करता है और इस तरह अपना प्रभुत्व जमाता है। ब्रॉकवुड में ऐसा कोई मार्गदर्शक, कोई गुरु नहीं चाहिए, क्योंकि शिक्षाएँ स्वयं ही उस सत्य को अभिव्यक्त करती हैं जिसे हर गंभीर मनुष्य को स्वयं ही खोज निकालना है। निजी पंथों व संप्रदायों के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। इस तथ्य पर ज़ोर देना आवश्यक है।

दुर्भाग्यवश हमारा मस्तिष्क संस्कृति और सभ्यता, परंपरा और शिक्षा द्वारा इस तरह संस्कारबद्ध तथा सीमित है कि हमारी समस्त ऊर्जा व कार्यक्षमता कैद हो कर रह गई है। हम उन्हीं घेरों में उलझ कर रह जाते हैं जो सुखदायक हैं, जिनके हम अभ्यस्त हैं, और इसी तरह हम मानसिक तौर पर बेकार, अक्षम हो जाते हैं। और फिर इस स्थिति से निपटने के लिए हम सांसारिक चिंताओं व स्वकेंद्रित कार्यों में अपनी ऊर्जा नष्ट करते रहते हैं।

ब्रॉकवुड में इस घिसी–पिटी परंपरा का अनुसरण एकदम नहीं होना चाहिए। ब्रॉकवुड सीखने की जगह है; प्रश्न करने की कला, जाँच–पड़ताल करने की कला—यह सब जानने के लिए है यह स्थल। इस जगह की परिकल्पना उस प्रज्ञा के जागरण की मांग करती है जो करुणा और प्रेम के साथ आती है।

इसे एक पृथक गुट या समुदाय नहीं बनने देना है। साधारणतः समुदाय का अभिप्राय होता है ऐसा कुछ जो अलग है, जो सांप्रदायिक भाव रखता है और जो अपने आदर्शवादी तथा यूटोपियन उद्देश्यों के कारण आबद्ध है। ब्रॉकवुड एक ऐसे स्थान की परिकल्पना है जहाँ अखंडता है, गहरी ईमानदारी है, और जहाँ संसार में फैली अस्तव्यस्तता, द्वंद्व व विनाश के बीचोंबीच प्रज्ञा के जागरण की संभावना है। और यह किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी समुदाय पर कतई निर्भर नहीं करता, बल्कि यह निर्भर करता है जो लोग वहाँ हैं उनकी सजगता, उनके ध्यान और स्नेह पर। इस सब के लिए ज़िम्मेदार हैं वे लोग जो ब्रॉकवुड में रहते हैं, और ज़िम्मेदार हैं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के ट्रस्टी। इसे साकार करना उनका दायित्व है।

इसलिए हरएक का योगदान आवश्यक है। यह बात केवल ब्रॉकवुड पर ही नहीं बल्कि अन्य सभी कृष्णमूर्ति फाउंडेशनों पर भी लागू होती है। मुझे ऐसा लगता है कि कहीं न कहीं हमारा ध्यान इस ओर से हट रहा है, हम विविध व्यस्त करने वाली गतिविधियों से घिरे रहते हैं, किसी न किसी कार्य विशेष में उलझे रहते हैं, इतने कि फिर शिक्षाओं से गहराई से जुड़ पाने हेतु न तो हमारे पास समय होता है न विश्रांति। और यदि शिक्षाओं से जुड़ने की मंशा नहीं है तो फाउंडेशनों का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता। हम इस विषय पर निरंतर चर्चा तो कर सकते हैं कि शिक्षाएँ क्या हैं, उनकी व्याख्या भी कर सकते हैं, एवं तुलना व मूल्यांकन भी, किंतु यह सब केवल ऊपरी दिखावा बनकर रह जाता है, और यदि हम इन शिक्षाओं को वास्तव में जी नहीं रहे हैं तो इस सब का कोई मतलब नहीं रह जाता।

भविष्य में ब्रॉकवुड का रूप क्या और कैसा होना चाहिये यह तय करना ट्रस्टियों का दायित्व रहेगा। किंतु ब्रॉकवुड हमेशा एक ऐसा स्थान रहना चाहिये जहाँ अखंडता, सत्यनिष्ठा खिल सके। ब्रॉकवुड एक बहुत ही सुंदर जगह है—ऊँचे भव्य पेड़ों, खेत–खलिहानों, चरागाहों, वाटिकाओं से घिरा, और देहाती माहौल की निश्चल शांति से भरपूर। इसे सदैव ऐसा ही बनाए रखना है; क्योंकि सौंदर्य का अर्थ ही है अखंडता, अच्छाई और सच्चाई।

जे. कृष्णमूर्ति

© 1983 कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड

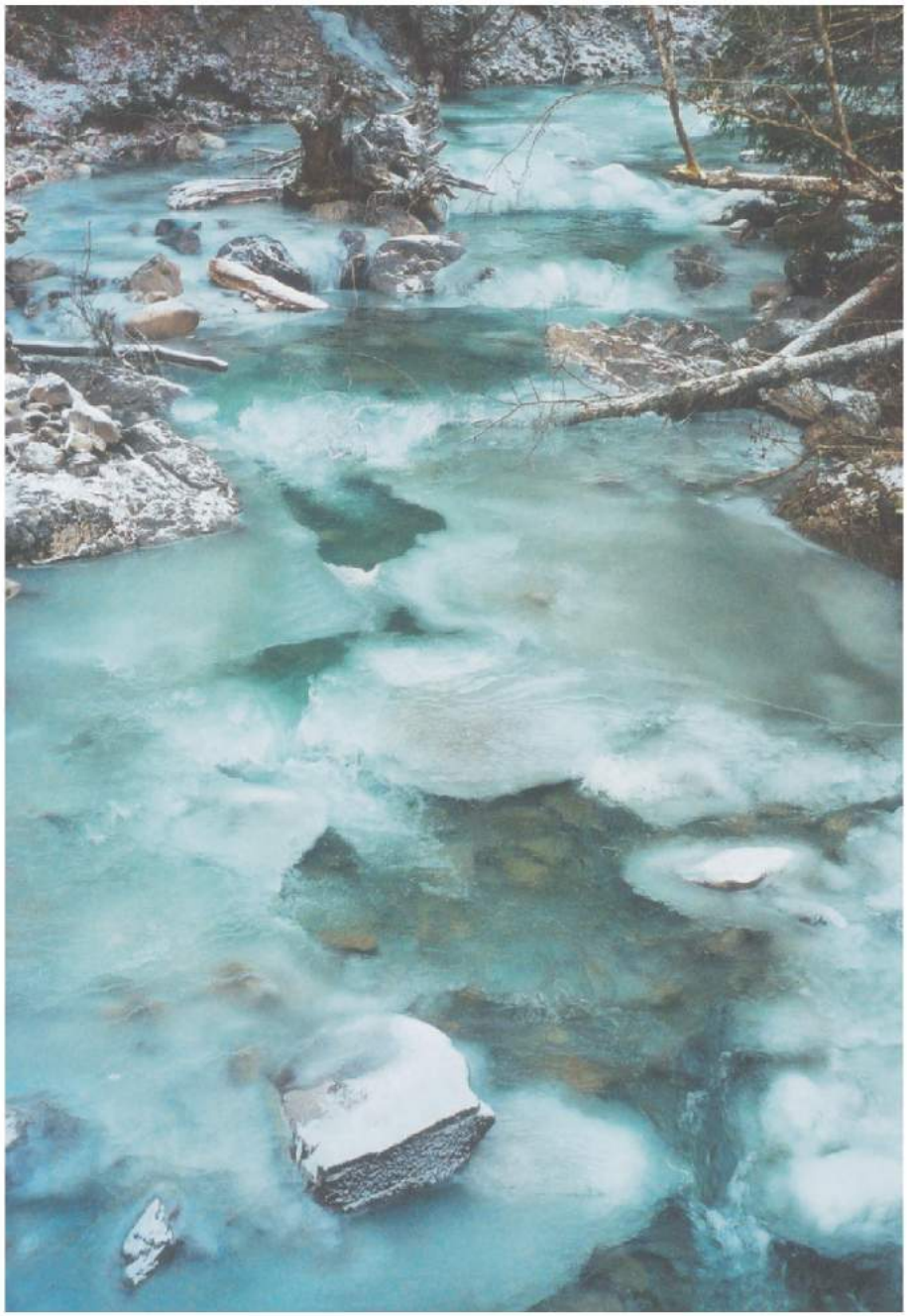

शीतऋतु में ग्रीशबाख का दृश्य; यहीं पर मैं गर्मियों में ज़ानेन, स्विट्ज़रलैंड में हो रही वार्ताओं में भाग लेने के पश्चात घर लौटते समय डुबकी लगाता था।

'के' के साथ हुईं शुरूआती मुलाकातें

वर्ष 1980 में मैंने कृष्णमूर्ति की पहली पुस्तक *द इम्पॉसिबल क्वेश्चन* पढ़ी। यह समझते हुए भी कि कृष्णमूर्ति को किसी उपन्यास की तरह नहीं पढ़ा जा सकता, मैं उस पुस्तक को अधूरा छोड़ न सका। उनका कहना उस सब के विपरीत जान पड़ रहा था जो हमने जीवनभर सीखा और अनुभव किया था। हालाँकि कभी न कभी उन बातों का हमें धुंधला–सा एहसास अवश्य हुआ होता है, किंतु 'के' ने उन्हें स्पष्ट, सरल एवं अत्यंत प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया था।

1981 में मैं जानता तो था कि कृष्णमूर्ति हर वर्ष ज़ानेन, स्विट्ज़रलैंड में कई सभाओं में बोलते हैं किंतु मेरी उनमें शामिल होने की कभी इच्छा नहीं हुई; मैं उनकी पुस्तकें पढ़ कर ही संतुष्ट था और सच तो यह है कि दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान, साहित्य, कला इत्यादि विषयों में—जो किसी समय मुझे बेहद आकर्षित करते थे—मेरी रुचि ही समाप्त हो गई, क्योंकि मुझे अचानक यह लगने लगा कि "बस यही तो है!" अन्य लेखकों की पुस्तकें अब उथली प्रतीत होने लगी थीं।

यह मेरे जीवन में एक बहुत बड़े परिवर्तन का समय था। और कई बातों के अलावा मैं अब व्यावसायिक जीवन से निवृत्त होने जा रहा था। पहले इन अनिवार्य प्रश्नों से जूझने का मेरे पास अधिक समय नहीं था। किंतु अब अचानक 'के' ने मुझे यह एहसास कराया था कि इन मुख्य विषयों, जैसे मृत्यु व प्रेम, आनंद व पीड़ा, स्वतंत्रता, इच्छा व भय से जुड़ना कितना महत्त्वपूर्ण है। जितनी गहराई से मैं 'के' की शिक्षाओं का अन्वेषण करता गया उनका आकर्षण मेरे लिए उतना ही बढ़ता गया।

ज़ानेन की वार्ताओं में मैंने पहली बार 1983 में भाग लिया था। रूझमों में मैं अपने निवास से एक ऊँची सड़क के किनारे चलते हुए वहाँ जाता था। वहाँ पहुँचने में मुझे डेढ़ घंटा लगता था—नदी के रास्ते की अपेक्षा यह रास्ता लंबा पड़ता था—और मैं बस ठीक समय पर पहुँच जाता था। अन्य लोग (ज़ानेन और ब्रॉकवुड, दोनों जगह) सारी रात कतार में खड़े रहते ताकि उस बड़े तंबू के खुलने पर वे अपनी पसंद की जगह पा सकें, अर्थात वह मंच जहाँ 'के' बोलने वाले हैं उसके ठीक सामने वाला स्थान, जहाँ इंच–इंच का बहुत अधिक महत्त्व था (कैलीफोर्निया व भारत में आम तौर पर इतनी मारामारी नहीं थी)। मैं तंबू के प्रवेश–द्वार के ठीक भीतर एक कोने में बनी सीढ़ियों पर बैठे हुए ही 'के' को सुनकर

संतुष्ट था। तंबू की क्षमता लगभग 20,000 लोगों की थी और वह हमेशा ही पूरा भरा होता था। अब मुझे उस भीड़ के बीच में बैठने की आवश्यकता नहीं थी और मैं ताज़ी हवा का आनंद लेते हुए तंबू के अंदर व बाहर की गर्मी से बचा रहता था।

तंबू के अंदर आप 'के' की पुस्तकें खरीद सकते थे, और अपना रकसैक उनसे भर कर मुझे खुशी होती थी। इसके पश्चात, चूँकि वह पहली गर्मी बहुत ही तेज़ थी, मैं रूझमों पैदल लौटते हुए ग्रीशबाख नदी में स्नान करता था, जो कि साधारणतः बहुत ही ठंडी हुआ करती थी।

'के' को सुनना अभिभूत कर देने वाला था। उनसे इतनी ऊर्जा उत्पन्न होती प्रतीत होती थी कि मुझे लगता था मैं उनके सीधे समक्ष नहीं बैठ सकता। वह सहजता और स्पष्टता से बोलते थे, भाव–भंगिमाएं बहुत कम, और कोई वाक्पटुता नहीं। उन्हें सुनते हुए मैं भूख–प्यास भूल जाया करता था और गर्मी की ओर भी मेरा ध्यान नहीं जाता था।

इन सभाओं में से एक के दौरान मेरी नज़र एक उत्तेजित नौजवान पर पड़ी जो लोगों की कतारों के बीच चला आ रहा था। वह तंबू की लंबाई के किनारे–किनारे वहाँ आया, जहाँ मैं बैठा था, और कई बिजली के पंखों को पैरों से मार कर गिराने लगा। वह जैसे ही मेरी ओर आया उसने मुझे अपने रास्ते से हट जाने का इशारा किया। मैं इस विचार से कि शायद वह मुझे भी पैर मारेगा थोड़ा झुक गया, परंतु उसने ऐसा कुछ किया नहीं। वह कोसता हुआ मुड़ा और 'के' की ओर बढ़ने लगा, बीच में रुका और झुककर एक महिला के गले से घृणापूर्वक उसका हार छीन लिया जिससे 'भगवान रजनीश' की तस्वीर लटक रही थी। मंच पर चढ़कर उसने 'के' के सामने रखा माईक्रोफोन छीना और 'के' तथा उपस्थित सभाजनों को जर्मन भाषा में संबोधित करते हुए कहने लगा : ''रजनीश के अनुयायियों को यहाँ से बाहर निकल जाना चाहिए, उनका यहाँ कोई काम नहीं है।'' फिर 'के' को सीधे संबोधित करते हुए उसने उनसे पूछा : ''क्या मैं सही नहीं कह रहा, मिस्टर कृष्णमूर्ति? क्या आप भी ऐसा ही नहीं सोचते?'' वह आदमी बहुत ही उत्तेजित दीख पड़ रहा था, और खतरनाक भी। आगे की पंक्ति में बैठे कुछ लोग तो उठकर खड़े हो गए थे। एक विशालकाय व्यक्ति, जो किसी पहलवान जैसा लग रहा था, मंच पर उस व्यक्ति पर बस टूट ही पड़ने वाला था। तंबू में बेहद उत्पात का माहौल बन गया था और कोलाहल मचा था। परंतु उसी क्षण 'के' बीच में आए और बोले : ''इन्हें हाथ मत लगाइए!'' उस घुसपैठिये को शायद यह अच्छा लगा, और उसने बार–बार यह बात दोहरायी, ''हाथ मत लगाइए, हाथ मत लगाइए''। कृष्णमूर्ति ने उसकी तरफ देखा व सहमति से सिर हिलाया;

हैंपशायर, इंग्लैंड में स्थित ब्रॉकवुड पार्क की वाटिका में लगा हैंकर्चिफ वृक्ष

वह व्यक्ति आखिरकार शांत हो गया और थोड़ी देर बड़बड़ाकर तंबू से बाहर चला गया। 'के' ने अपनी वार्ता आगे बढ़ाई मानो कुछ हुआ ही नहीं था।

ऐसा ही कुछ ओहाइ में एक सभा में भी हुआ था, जब एक महिला अचानक ही मंच पर चढ़ गई जहाँ 'के' बैठे थे। वह थोड़े चौंक गए पर जल्द ही अपने को संभाल लिया व उस महिला से कहा कि यदि वह शांति से बैठी रहे तो उन्हें उसके मंच पर साथ बैठे रहने में कोई आपत्ति नहीं होगी। वह महिला वाकई शांत बैठी रही, केवल बीच में कभी–कभार अपना सिर घुमा कर 'के' की ओर देखती व मुँह बनाती जब कि 'के' ने अपना बोलना जारी रखा। अंत में वह उसकी ओर झुके और बोले : वार्ता समाप्त हुई।

पहले–पहल जब मैंने ज़ानेन वार्ताओं में भाग लिया तब तक मैं कृष्णमूर्ति संस्थाओं और विद्यालयों के संपर्क में नहीं आया था। 'के' की एक अन्य पुस्तक, *एजूकेशन एंड द सिग्निफिकेंस ऑफ लाइफ* (शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य) में मैंने एक वाक्य पढ़ा था

जिसका सार यह था : यदि आप आज के विद्यालयों से संतुष्ट नहीं हैं तो आप अपना एक विद्यालय शुरू क्यों नहीं करते? इसी से मुझे स्विट्ज़रलैंड में एक विद्यालय की स्थापना करने का विचार आया था। मुझे लगा कि जिस देश में पियाझे, पेस्तालोत्सी और रूस्सो जैसे महान शिक्षक क्रियाशील रहे हैं वह इस कार्य के लिए उचित स्थल रहेगा। मैंने जिनेवा में स्थित कृष्णमूर्ति समिति से संपर्क किया और मुझे बताया गया कि ब्रॉकवुड की एक शिक्षिका गर्मियों में अपने देश स्विट्ज़रलैंड जाने वाली हैं। मैंने झिज़ेल बैलीज़[1] नाम की उन महिला से संपर्क स्थापित किया, और जल्द ही वह और मैं अपने कुछ और मित्रों के साथ, जिनकी इस अभियान में रुचि थी, विद्यालय के लिए एक उचित इमारत की खोज में लग गए। हमने शांदोलैं, वलै में एक सुंदर–सी इमारत ढूँढ़ निकाली। वह एक पुराना, संरक्षित होटल था जो कि बहुत ही सुंदर जगह बना हुआ था और जिससे दूर माटेरहॉर्न का दृश्य दिखता था; वह जगह पचास से साठ बच्चों के लिए काफ़ी थी।

1983 की ज़ानेन वार्ताओं के दौरान 'के' ने इस अभियान के बारे में सुना और मुझसे मिलने को कहा। सभाओं के समाप्त होने के पश्चात मैंने गेश्टाड के पास शले टानेग्ग में फोन किया, जहाँ वह ठहरे हुए थे, और तय हुआ कि हम पहली अगस्त को वहाँ मिलेंगे। चूँकि मुझे पता था कि 'के' अपनी वेशभूषा पर खास ध्यान देते हैं, मैं दाढ़ी–वाढ़ी बना कर और अच्छे कपड़े पहन कर वहाँ गया। परंतु क्योंकि दोपहर काफ़ी गर्म होती थी इसलिए मैंने सुबह मिलने का निवेदन किया था, और जब मैं वहाँ पहुँचा तो 'के' अभी भी सादा ट्रैकसूट पहने हुए थे, जिसके लिए उन्होंने क्षमा माँगी। तब भी मैंने अनुभव किया था कि 'के' कितने चुपचाप और धीमे से, बिना ध्यान आकर्षित किए किसी कमरे के भीतर आ सकते थे। अपने स्नेहभरे अंदाज़ में उन्होंने मुझसे मेरे जीवन के बारे में पूछा। हम साथ हँसे–बोले और पर्वतारोहण (मेरी ऑल्प्स पर्वत–शृंखला में गहरी रुचि रही है) व कई अन्य विषयों पर बातचीत करने लगे।

बाहर के सुंदर प्राकृतिक दृश्य की ओर इशारा करते हुए मैंने कहा, ''मैंने यहाँ दिखाई देने वाली इन सभी चोटियों की चढ़ाई की है''। जवाब में उन्होंने वनों और पहाड़ियों की

---

1. झिज़ेल बैलीज़ ने कई वर्षों तक ब्रॉकवुड पार्क स्कूल में फ्रेंच पढ़ाई। 'के' के देहांत के पश्चात उन्होंने ज़ानेन में सभाओं का आयोजन करना आरंभ किया। ये सभाएँ आज भी हर वर्ष आयोजित की जाती हैं। वह स्विट्ज़रलैंड में कृष्णमूर्ति समिति की फ्रेंच भाषा में होने वाली गतिविधियों को देखती हैं, और वह 1969 में इंग्लैंड में स्थापित कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड की एक ट्रस्टी हैं।

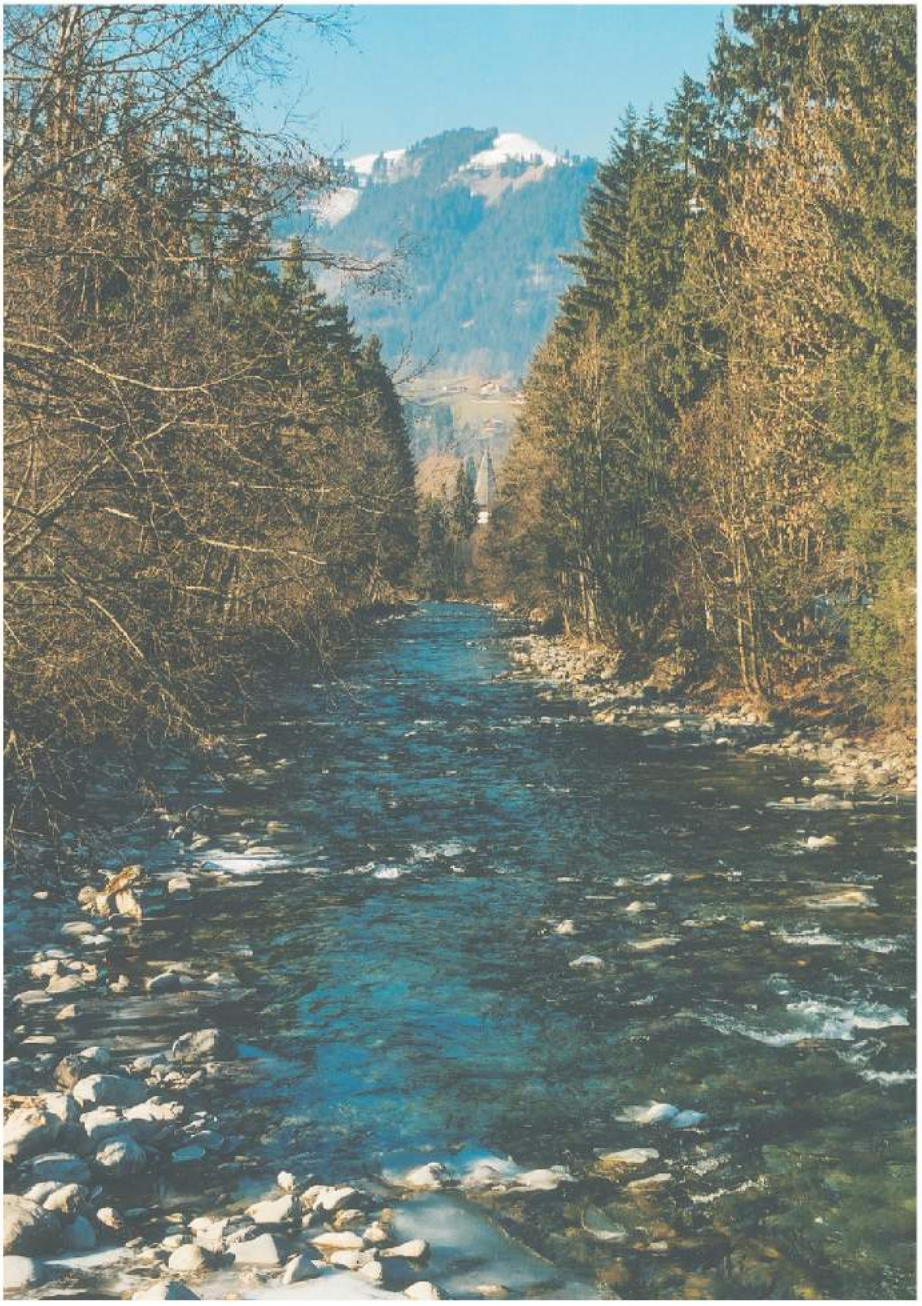

ज़ानेन, स्विट्ज़रलैंड, की ओर का दृश्य; पार्श्व में रोदोमाँ; यह तस्वीर ज़ानेन पर बने पुल से ली गई है, जिसे ज़ानेन जनसभाओं के लिए जाते हुए कई लोगों ने पार किया होगा।

ओर संकेत करते हुए कहा : *और मैं इन सभी रास्तों पर गया हूँ*। जब मैंने टिप्पणी की कि पर्वत वास्तव में ऊपर से अधिक नीचे से सुंदर दिखते हैं तो उन्होंने एक हार्दिक "हाँ!" कह कर हामी भरी।

उन्होंने मुझसे पूछा कि स्कीइंग के लिए जाते समय मैं पर्वत पर खड़ी चढ़ाई से जाता था कि आड़े–टेढ़े रास्ते से। यह जानकर कि कभी–कभी मैं सीधे–सीधे भी चढ़ जाता था वह बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने बताया कि युवावस्था में उन्हें स्कीइंग करने में रुचि थी किंतु उन्हें इसकी अनुमति नहीं थी क्योंकि यह खेल उनके लिए खतरनाक समझा जाता था। फिर भी वह अन्य कई प्रकार के खेल खेला करते थे। अपनी किशोरावस्था में वह टेनिस खेलते थे, एक निपुण गोल्फ खिलाड़ी थे, पैदल यात्रा करते थे, साइकिल चलाया करते थे और तैराक भी थे। बाद के वर्षों में वह हर रोज़ पैदल सैर के लिए जाते थे। और जीवन भर वह योग का अभ्यास करते रहे। अपने जीवन के अंतिम महीने में जब परमेश्वरम, उनके भारतीय रसोइए, उन्हें योगाभ्यास करते हुए देखते तो उन्हें अत्यंत प्रसन्नता होती क्योंकि इससे पता चलता था कि 'के' के शरीर में फिर से ऊर्जा लौट आयी है।

जब वह नौजवान थे तब उन्होंने कुछ डच दोस्तों के साथ दावोस की यात्रा की थी, और आडेलबोडन में वह कुछ समय एक पहाड़ी–झोंपड़े में रहे थे। वह हर रोज़ प्रातः स्नान के लिए कुएँ की बर्फ को तोड़ा करते, बाद में ब्रोंकाइटिस हो जाने के कारण उन्हें यह छोड़ना पड़ा। उन्होंने मुझे बताया कि कैलीफोर्निया में एक बार वह अकेले ही एक झोंपड़ी में रहे थे। वहाँ पर एक ग्रामोफोन था और एक ही रिकार्ड था—बेथोवन की नाइन्थ सिम्फनी। वह उसे हर रोज़ बजाते जब तक कि उन्हें उसका हर स्वर याद नहीं हो गया। संगीत की ओर उनका रुझान काफ़ी था और बेथोवन, मोत्ज़ार्ट और अन्य कई शास्त्रीय संगीतकारों की रचनाओं को वह बहुत पसंद करते थे। साथ ही संस्कृत श्लोकोच्चारण और भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी उनकी रुचि थी। एक बार कुछ लोगों ने आकर पूछा कि वह संत कहाँ हैं जिनके बारे में हमने सुना है कि यहाँ रहते हैं, तो 'के' ने उन्हें कहा कि वह बस अभी–अभी वहाँ से निकल गए! 'के' सटीक हँसी–मज़ाक में माहिर थे जिसका तजुर्बा मुझे कई मर्तबा हुआ।

इस पहली भेंट के दौरान मैंने उन्हें जानकारी दी कि हमारी कंपनी पानी की टूटियों का उत्पादन करती है। मैंने उन्हें बताया कि कितना मुश्किल होता है कर्मचारियों में आपसी सहयोग का माहौल बनाना, और यह भी कि मैं अपने प्रबंधकर्ता सहयोगियों के साथ मित्रता व स्नेहपूर्ण संबंध रखने के लिए कितना उत्सुक था। 'के' ने उत्तर दिया : *आपको पता है*

हैंपशायर, इंग्लैंड में स्थित ब्रॉकवुड पार्क स्कूल

कि लोगों से आपसी सहयोग से कार्य करवाना कितना कठिन है ? जल्द ही मुझे यह स्पष्ट हुआ कि फाउंडेशन के अंदर भी लोगों के लिए एक साथ मिल कर कार्य करना आसान नहीं था। और उस समय तो मुझे ओहाइ, ब्रॉकवुड और भारत के विद्यालयों में होने वाली दिक्कतों का आभास भी नहीं था।

जब हमने उस विद्यालय के संबंध में बातचीत की जो मैं स्विट्ज़रलैंड में शुरू करना चाहता था, तब 'के' ने बतलाया : *विद्यालय शुरू करना बहुत ही मुश्किल कार्य है। हमने स्विट्ज़रलैंड, हॉलैंड और फ्रांस में विद्यालय शुरू करने की कोशिश की थी, किंतु सफल न हो सके जब तक हमें ब्रॉकवुड नहीं मिला। अपनी उदारपंथी शिक्षाप्रणाली के कारण इंग्लैंड बिलकुल उपयुक्त जगह साबित हुई। और विद्यालयों को तो हमेशा ही धन की आवश्यकता होती है* ! मैंने जवाब दिया, "खुद से पूछना पड़ेगा कि कहीं मैं अपना धन यूँ ही खिड़की से बाहर तो नहीं फेंक रहा"। यह सुन कर 'के' ठहाका मार कर हँस पड़े। ('के' के देहांत के पश्चात हममें से कुछ ने जर्मनी में विद्यालय की स्थापना करने की कोशिश की परंतु फिर असफल रहे।)

मैं काफ़ी समय से इस प्रश्न के साथ जूझ रहा था कि धन का उचित उपयोग करते हुए कोई भला व हितकारी कार्य कैसे किया जाए। यथायोग्य विचार करने के पश्चात यह स्पष्ट हो गया था कि समाज–सुधार व पर्यावरण–संरक्षण संस्थाएँ कोई बुनियादी बदलाव लाने में सक्षम नहीं हैं। राजनीतिक एवं आर्थिक उपाय भी मानवजाति द्वारा किए जा रहे इस धरती के विनाश को रोक पाने में कुछ खास सफल नहीं हो पाए थे। संभावना थी तो केवल एक—मनुष्य के मानस में एक गहरा परिवर्तन, सम्यक शिक्षा के साथ। यही 'के' स्कूलों का लक्ष्य था। इसलिए जब मैंने 'के' से पूछा कि क्या धन किसी भले काम भी आ सकता है तो उनके सीधे–सरल उत्तर ने मुझे चौंका दिया। अब देखिये, उन्होंने कहा, *किसी ने हमें एक बार कुछ धन दिया था और उस धन से हमने ब्रॉकवुड पार्क खरीद लिया*।

हालाँकि 'के' ने मुझे मेरे विद्यालय स्थापना अभियान में आ सकने वाली परेशानियों से आगाह किया था, फिर भी हमने इस दिशा में कार्य जारी रखा। शिक्षक ढूँढ़ने में दिक्कत आ रही थी और प्रत्याशित छात्र भी अधिक नहीं थे, परंतु फिर भी हम ब्रॉकवुड गए और उन्हें अपनी अब तक की प्रगति का ब्यौरा दिया। दोपहर के भोजन के दौरान मैंने 'के' को शांदोलैं की तस्वीरें दिखाने की कोशिश की, किंतु उन्होंने इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई। फिर अचानक वह झिज़ेल की ओर मुड़े और मेरी ओर इशारा करते हुए उनसे पूछा : *यह धन–स्रोत हैं। क्या आप इनके बावजूद भी विद्यालय की स्थापना करेंगी* ? झिज़ेल ने उत्तर दिया : "यह केवल धन–स्रोत नहीं हैं"। और 'के' ने जवाब दिया : *हाँ, हाँ,* मुझे मालूम है। फिर 'के' ने मेरी ओर रुख किया और पूछा : *क्या आपके पास सही शिक्षक, सही छात्र और सही माता–पिता हैं* ? उसी क्षण मेरी आँखों पर से पर्दा उठ गया। हमारे पास ये सब नहीं थे। तब यह बात मुझे स्पष्ट हुई कि एक नया विद्यालय शुरू करना कोई मायने नहीं रखता, क्योंकि पहले से ही कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के कई स्कूल इंग्लैंड, भारत और अमेरिका में हैं। वह नियमित रूप से इन स्कूलों में जाते थे, अपना अधिक से अधिक समय व ऊर्जा उन्हें देते थे। मुझे एहसास हुआ कि नये विद्यालयों का निर्माण करने की अपेक्षा स्थापित किए जा चुके विद्यालयों की आर्थिक व अन्य प्रकार से सहायता करना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सभाओं में हज़ारों लोगों से बोलने के अलावा 'के' नियमित रूप से छात्रों, शिक्षकों और स्कूलों व फाउंडेशनों के कार्यकर्ताओं से भी बातचीत किया करते थे—व्यक्तिगत संवादों में या फिर सामूहिक चर्चाओं में। उनमें व्यवहारिक समस्याओं का समाधान कर पाने की एक असाधारण क्षमता थी; वह समस्या की हर बारीकी पर ध्यान देते थे। उन्हें पता होता था

कि समस्या का वास्तविक कारण क्या है। मैंने उनसे एक बार कहा कि यदि उन्होंने व्यावसायिक जीवन चुना होता तो वह एक बहुत ही अच्छे मैनेजर सिद्ध होते। यह सुनकर वह हँस पड़े।

हमारी यह बातचीत तब हुई जब मैं उन्हें कुछ अच्छी तरह जानने लगा था। किंतु हमारी आरंभिक भेंटवार्ताओं में ही मैंने उन्हें एक लचीले और खुले दिमाग का व्यक्ति पाया, जिनके स्वभाव में विनोदप्रियता, नम्रता और वास्तविक उदारता भरपूर थी। मैं यह जानने को बहुत उत्सुक था कि जीवन की इतनी प्रभावशाली परख रखने वाले व्यक्ति की दिनचर्या क्या होगी, वह किस प्रकार के व्यक्ति होंगे। यह कल्पना कर पाना कठिन था कि अहं से मुक्त एक मनुष्य—जो कि वह थे—कैसे इस संसार में रहता होगा। मैरी ज़िंबालिस्ट[2] ने एक बार मुझसे कहा था कि 'के' एक बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते हैं। जितना मैं उन्हें जान पाया था, उसके अनुसार यह कथन पूर्णतः सत्य था।

'के' की जीवनकथाओं में मैरी लट्यन्स[3] ने इस अधिक व्यापक प्रश्न पर ग़ौर किया है कि 'के' कौन थे। हालाँकि 'के' ने अकसर इस पर ज़ोर दिया कि यह जानना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि वह कौन हैं—बल्कि यह जान पाना कि आप स्वयं कौन हैं अधिक महत्त्वपूर्ण है—फिर भी उन्होंने उस प्रश्न पर प्रभावी चर्चा की। यदि आप उस प्रश्न की गहराई में जाने की इच्छा रखते हैं तो मैं आपको मैरी द्वारा लिखित 'के' की जीवनियों और इस पुस्तक के अंत में दी गई सूची में उल्लिखित पुस्तकों को पढ़ने की सलाह दूँगा।

---

2. मैरी ज़िंबालिस्ट 1965 से 'के' से संबद्ध रहीं तथा उन्होंने 21 वर्षों तक उनकी निजी सचिव एवं सहयात्री की भूमिका निभायी। वह के.एफ.टी. तथा 1973 में कैलीफोर्निया में स्थापित के.एफ.ए. की एक संस्थापक ट्रस्टी थीं।
3. मैरी लट्यन्स जब पहली बार 'के' से मिलीं—इंग्लैंड में उनके आगमन के तुरंत बाद—तब वह एक छोटी बच्ची थीं। उनकी माँ लेडी एमिली लट्यन्स (स्थापत्यकार सर एडविन लट्यन्स की पत्नी) कई वर्षों तक 'के' के काफी नज़दीक रहीं। 'के' ने मैरी से अपनी जीवनी लिखने को कहा और *द यिअर्स ऑफ अवेकनिंग, द यिअर्स ऑफ फुलफिलमैंट, द ओपन डोर* तथा *द लाइफ एंड डेथ ऑफ कृष्णमूर्ति* प्रकाश में आयीं। 1999 में उनका देहांत हो गया।

बुशियौं में भेंट

1983 में अगस्त में ज़ानेन से जिनेवा जाते हुए 'के' मुझसे मिलने बुशियौं आए, जो कि जिनेवा झील पर स्थित है। हम पास ही शानदार पेड़ों से घिरे शतौ–दालामां के खुशनुमा आंगन में मिले। 'के' मेरी गाड़ी में चढ़े और मैरी ज़िंबालिस्ट और डा. परचुरे[4], जो कि उनके साथ थे, हमारे पीछे अपनी गाड़ी में आए। बुशियौं जाते समय रास्ते में मुझे यह अजीब एहसास हुआ जैसे मेरे साथ गाड़ी में कोई है ही नहीं। बाद में कई लोगों से मैंने सुना कि 'के' के साथ उन्हें भी कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ था। इसके बाद जब भी 'के' यह कहते कि मैं कोई नहीं हूँ, मुझे यह घटना याद आ जाती।

उसी मौके पर मैंने उनसे बात करना आरंभ किया और पूछा कि क्या वह इस क्षेत्र से परिचित थे, जबकि कहीं न कहीं मुझे महसूस हो रहा था कि मैं उनका ध्यान भंग कर रहा हूँ। हालाँकि उन्होंने तुरंत मेरे प्रश्न का उत्तर दिया, फिर भी मुझे ऐसा लगा मानो ऐसा करने के लिए उन्हें कहीं दूर से वापस आना पड़ा हो।

कई अवसरों पर 'के' ने यह कहा था कि अतीत की शायद ही कोई याद उनके पास बची हो, और स्मृतियों का बोझ न ढोना उन्हें असीम व अद्‌भुत ऊर्जा प्रदान करता था। ऋषि वैली में एक बार हमारी भेंट एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से हुई, जो इस बात पर अड़े थे कि वह 'के' को कई वर्षों से जानते थे, जबकि 'के' को वह याद ही नहीं थे। बाद में 'के' ने मुझसे कहा : *बंदर को हर कोई पहचानता है, परंतु बंदर किसी को नहीं पहचानता।*

बुशियौं पहुँचने पर हम झील की ओर चल दिए। पेड़ों के नीचे उस पथ पर 'के' रुके, ध्यान से सुनने लगे और बोले : मौन। मुझे लगा वह केवल बाह्य मौन की ओर इशारा नहीं कर रहे थे। रास्ते पर एक टूटी हुई टहनी पड़ी थी; उन्होंने उसे सावधानी से उठाया और एक किनारे रख दिया। उन्होंने वहाँ के सिंचाई–प्रबंध को देखा और तुरंत ही समझ लिया

---

4. डा. टी. के. परचुरे 1973 से भारत में 'के' की यात्राओं के दौरान उनके साथ रहा करते थे ताकि उनकी सेहत की देखभाल कर सकें। बाद के वर्षों में वह यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी 'के' के साथ होते थे, और 1986 में ओहाइ में 'के' के निधन के समय वहीं पर थे।

बुशियौं, स्विट्ज़रलैंड से जिनेवा झील का दृश्य

कि वह कैसे कार्य करता है। घर के सामने लगे आरोकारिया पेड़ को भी वह पहचान गए, जबकि वह एक बहुत ही दुर्लभ प्रजाति है; उन्होंने मैरी का ध्यान विशेषतः सुंदर गहरे बैंगनी–नीले पेटूनिया की ओर दिलाया, जो छज्जे पर खिले थे और जिनकी देखभाल मैं कर रहा था। झील के किनारे चलते हुए उन्होंने मुझे बताया कि कई वर्ष पूर्व वह अपने भाई के साथ अंफियौं में, जो कि झील के पार थोनों और एवियां के बीच स्थित है, छुट्टियां मनाने आए थे। वहाँ के ओतेल–द–प्रैंस में रहना बहुत आरामदायक नहीं था। उस होटल में इतना गर्म पानी भी उपलब्ध नहीं था कि वह झील में ठंडी डुबकी लगाने के बाद खुद को गर्म कर पाते। 'के' का यह मानना था कि यही उनके भाई को टी.बी. होने का कारण था, जिसके कारण उनकी ओहाइ में 1925 में अकाल मृत्यु हुई थी।

एक वर्ष पश्चात, ज़ानेन जाते समय, 'के' दोपहर के भोजन के लिए बुशियौं में रुके। जैसे ही वह भोजनकक्ष के भीतर आए उनके मुँह से निकला : हुंह। और क्षणभर के लिए

उन्होंने एक हाथ से अपनी आँखे ढांप लीं। उस समय वहाँ दीवार पर काफी गहरे रंगों वाले कई सारे चित्र लगे थे। भोजन करते समय वह एक चित्र को बहुत गौर से देख रहे थे, जो ठीक उनके सामने दीवार पर लटका था। 'के' किसी भी वस्तु को सघनता से, ध्यान से, आराम से देखा करते थे। उन्होंने मुझे बताया कि कैसे एक बार, युद्ध से पहले, पैरिस में उन्हें पिकासो द्वारा बनाया गया चित्र 'गुएर्निका' दिखाया गया। काफी समय तक उसे देखने के बाद 'के' ने पूछा था : *यह क्या है?* गोया एक ऐसे चित्रकार थे जिनकी कला की 'के' सराहना करते थे; इसका एक कारण यह हो सकता था कि नब्बे वर्ष की आयु में भी गोया का यह कहना था कि वह अभी भी सीख रहे हैं। 'के' यह मानते थे कि आधुनिक कलाकार अपनी रचनाओं में अव्यवस्था, उग्रता व विभाजन दर्शा कर केवल विभ्रम और विखंडन को बढ़ावा देते हैं। कुछ समय पश्चात जब मैं ब्रॉकवुड वापस आया तब डौरोथी सिमौन्स[5] ने बताया कि बुशियौं में स्थित एक घर में 'के' का जाना हुआ जिसका उन्होंने बहुत ही उत्सुकता से वर्णन किया था।

जब मैं ब्रॉकवुड में था तब मुझे छात्रों और कार्यकर्ताओं के साथ 'के' के वार्तालापों में भाग लेने का आमंत्रण दिया गया। जब 'के' कमरे में दाखिल होते तब लगभग हर कोई बहुत ही संजीदा नज़र आता। फिर 'के' सभा के सम्मुख बैठते और, सबसे पहले, एक–एक करके हर उपस्थित व्यक्ति की ओर ध्यान से देखते। मैं आमंत्रण पाकर इतना प्रसन्न था कि जब 'के' ने मेरी ओर देखा तो मैं मुस्कुरा दिया। उन्होंने पलट कर मुझे एक ऐसी दीप्तिमान मुस्कुराहट दी जैसी कि पहले कभी किसी ने नहीं दी थी। वहाँ सामने बैठे लोग पीछे मुड़ कर देखने लगे कि आख़िर यह हो क्या रहा है!

---

5. 1969 में अपने पति मोन्तागु के साथ ब्रॉकवुड पार्क स्कूल की स्थापना में सहकारी होने से पूर्व डौरोथी सिमौन्स एक जानीमानी शिल्पकारा और शिक्षिका थीं। वह ब्रॉकवुड पार्क स्कूल की प्रथम प्रधानाचार्या थीं, और 1989 में अपने देहांत तक उसकी ट्रस्टी रहीं।

बुशियौं, स्विट्ज़रलैंड से अंफियौं की ओर दिखाई देता जिनेवा झील का दृश्य

अंफियौं, फ्रांस में स्थित ओतेल दे प्रैंस (वर्तमान रूप), जहाँ 1920 में 'के' ठहरे थे।

ओहाइ

मई 1984 में मैं जनसभाओं में भाग लेने ओहाइ गया। मुझे बताया गया कि 'ओहाइ' एक अमरीकी–इंडियन शब्द है जिसका अर्थ है 'घरौंदा'। पूरी वादी में एक अपार शांति व्याप्त रहती है; वैन्ट्यूरा से यहाँ पहुँचते ही इस शांति का एहसास होने लगता है, ख़ासतौर पर शाम को या उन भव्य, चाँदनी से नहाई रातों में, जो केवल यहीं देखने को मिलती हैं। 'के' बाकायदा ओहाइ आते रहते; अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा उन्होंने ओहाइ में बिताया; यहीं उनके भाई की 1925 में मृत्यु हुई; और यहीं 1986 में 'के' का भी देहांत हुआ।

'के' जहाँ भी रहते, वहाँ मित्रों को या अन्य ऐसे दिलचस्प लोगों को खाने पर ज़रूर बुलाते जिनसे वह बातचीत करना चाहते थे। ज़ानेन, मद्रास, ऋषि वैली, राजघाट और ओहाइ में तो यह एक रिवाज़ सा था, किंतु ब्रॉकवुड में नहीं; वहाँ वह विद्यार्थियों व स्टाफ़ के लोगों के साथ भोजन करते। मिशाएल क्रोहनेन[6], जिन्हें ऐलन हुकर[7] ने खाना बनाने की कला सिखाई थी, ओहाइ के प्रधान रसोइये थे। भोजन बनाने के अलावा मिशाएल की अनौपचारिक ज़िम्मेदारी यह भी थी कि वह खाने के समय 'के' को दुनिया की ख़बरों का ब्यौरा दें। इस कार्य के लिए वह बिलकुल उपयुक्त व्यक्ति थे; मिशाएल की आवाज़ ज़ोरदार थी और 'के' भी जीवन के आख़िरी पड़ाव पर कुछ कम सुनने लगे थे। एक बार 'के' ने यूँ ही हँस कर कहा : *पहले दाँत, फिर कान, फिर आँखें और फिर सब कुछ माटी*

---

6. मिशाएल क्रोहनेन ने, जो कि जर्मनी के थे, ओक ग्रोव स्कूल व के.एफ.ए. में 1975 से 1988 तक प्रधान खानसामा के पद पर कार्य किया। वह 'द किचन क्रोनिकल्स : 1001 लन्च्स विद जे. कृष्णमूर्ति' के लेखक हैं। फिलहाल वह के.एफ.ए. के लिए 'के' की वार्ताओं के आलेखों की जाँच का कार्य करते हैं।
7. ऐलन हुकर ने खाना बनाने की कला पर कई किताबें लिखीं और वह ओहाइ के प्रसिद्ध रैन्च हाउस रेस्तराँ के प्रवर्तक व मालिक थे। 'के' के संपर्क में वह 1949 में आए, और 1989 तक के. एफ.ए. के ट्रस्टी रहे। 1993 में उनका देहांत हो गया। उनकी पत्नी हेलन हुकर भी के.एफ.ए. की ट्रस्टी थीं। 2000 में 97 वर्ष की उम्र में उनका देहांत हो गया।

में। एक अन्य अवसर पर उन्होंने एक इटालियन कहावत का ज़िक्र किया : *मरना सबको है; शायद मुझे भी।*

ओहाइ में भोजन के लिए आने से पहले 'के' रसोईघर में जाते, खाने के बर्तनों में झांकते और मिशाएल से दो बातें करते, और फिर वहाँ से भोजनकक्ष में आ जाते। एक मर्तबा मैंने और मिशाएल ने यह अनुमान लगाने की कोशिश की कि 'के' रसोईघर के उस दरवाज़े से कितनी बार गुज़रे होंगे। हमने अंदाज़ा लगाया कि जब तक मिशाएल यहाँ के प्रधान रसोइये रहे, 'के' करीब हज़ार बार उधर से गुज़रे होंगे।

मिशाएल ने मुझे आमंत्रण दिया कि जब 'के' रसोईघर में आएँ तो मैं भी वहाँ रहूँ और इस तरह उनसे कुछ बातचीत भी हो जाएगी। एक दिन दांपत्य जीवन की कठिनाइयों से कुछ परेशान होकर मैंने 'के' से मशविरा लेने का फैसला किया, लेकिन एकदम सीधे तौर पर नहीं, बस यह विचार था कि "मेरी मदद कीजिए!" परंतु इस बार 'के' ने मुझे कोई तवज्जो नहीं दी। यह मेरे लिए एक अच्छा सबक था कभी मदद न माँगने का!

कभी–कभी खाने पर बीस के करीब मेहमान हुआ करते। 'के' वास्तव में बहुत ही संकोची स्वभाव के थे। एक बार, जब भोजन पर बहुत से अतिथि मौजूद थे, तब मैंने उन्हें कुछ सकुचाते हुए पूछते सुना : *ये सब लोग कौन हैं ?* उपस्थित लोग उन्हें तभी देख पाते जब वह विनम्रता से परदे के पीछे से बाहर निकलते व अतिथियों को यह कह कर आमंत्रित करते : *भोजन के लिए तशरीफ लाएं।*

ओहाइ में भोजन एक बुफ़े की तरह परोसा जाता था—मेहमान स्वयं अपना खाना लेते और भोजनोपरांत सब अपनी–अपनी थालियाँ साफ करने के लिए स्वयं रसोई में ले जाते। 'के' अपने लिए सबसे अंत में भोजन परोसते, और खाने के बाद न केवल अपनी थाली बल्कि कुछ अन्य बर्तन भी रसोई में ले जाते, कभी–कभी तो सबसे बड़े और भारी बर्तन।

ऐसे ही एक भोजन के दौरान 'के' ने ओक ग्रोव स्कूल पर एक वक्तव्य का ज़िक्र किया जो उन्होंने 1975 में लिखा था और बाद में स्कूल के स्टाफ के साथ मिलकर उसमें संशोधन किया था। वह चाहते थे कि इसे जनसभाओं में वितरित किया जाए। परंतु फाउंडेशन के पास एक अच्छी फोटोकॉपी की मशीन नहीं थी और ऐसा लग रहा था कि आलेख का समय पर छपना कठिन होगा। इसी ने मुझे प्रेरित किया कि मैं फाउंडेशन को एक बढ़िया फोटोकॉपियर भेंट करूँ। उस आलेख का शीर्षक था 'द इन्टेंट ऑफ ओक ग्रोव स्कूल' या 'द इन्टेंट ऑफ कृष्णमूर्ति स्कूल्स' ('ओक ग्रोव स्कूल का उद्देश्य' या

'कृष्णमूर्ति विद्यालयों का उद्देश्य')। चूँकि मैं उस आलेख को महत्त्वपूर्ण मानता हूँ इसलिए इसे यहाँ इस पुस्तक में शामिल कर रहा हूँ :

ओक ग्रोव स्कूल का उद्देश्य

इस विध्वंसक, विनाश और पतन की ओर अग्रसर संसार में यह और भी आवश्यक होता जा रहा है कि एक ऐसा स्थान हो, एक मरुद्वीप हो जहाँ व्यक्ति जीवन जीने का वह ढंग सीख सके जो कि समग्र है, विवेकपूर्ण और प्रज्ञाशील है। आधुनिक संसार में शिक्षा का संबंध प्रज्ञा की अपेक्षा बुद्धि, स्मरणशक्ति और उसकी निपुणता के विकास से जुड़ कर रह गया है। इस प्रक्रिया में सिवाय शिक्षक द्वारा विद्यार्थी तक, मार्गदर्शक द्वारा अनुयायी तक जानकारी पहुँचाने से अधिक और कुछ घटित नहीं होता, जिसके कारण जीवन बस सतही और मशीनी चाल बन जाता है। ऐसे में मनुष्य से मनुष्य का संबंध न के बराबर ही रह जाता है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि विद्यालय एक ऐसी जगह है जहाँ हम जीवन की संपूर्णता, उसकी समग्रता के बारे में सीखते हैं। अकादमिक, विषय संबंधी निपुणता नितांत आवश्यक है, किंतु एक विद्यालय का उद्देश्य इससे कहीं अधिक है। यह एक ऐसा स्थान है जहाँ शिक्षा प्रदान करने वाला और शिक्षा ग्रहण करने वाला न केवल बाह्य संसार, अर्थात ज्ञान के संसार की खोजबीन करते हैं बल्कि वे अपनी खुद की सोच, अपने आचरण की भी जाँच–पड़ताल करते हैं; इसी से उन्हें अपनी संस्कारबद्धता और कैसे यह उनकी सोच को विकृत कर देती है इसका बोध होता है। यह संस्कारबद्धता ही हमारा अहं है जिसे हम इतनी अधिक महत्ता देते हैं, जिसका हम निष्ठुरता से बचाव करते हैं। संस्कारबद्धता और उसमें निहित दुःख और दुर्दशा से मुक्ति का आरंभ इसी सजगता से होता है। और तभी सच्ची शिक्षा संभव हो पाती है। इस स्कूल में शिक्षकों का यह दायित्व है कि वे विद्यार्थियों के साथ संस्कारबद्धता और उसके निहितार्थों की ध्यानपूर्वक व लगातार जाँच–पड़ताल करें और इस प्रकार उसका अंत कर डालें।

विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ हम ज्ञान के महत्त्व और उसकी सीमाओं के बारे में सीखते हैं। यहाँ हम इस संसार का अवलोकन करना सीखते हैं बिना किसी निर्धारित

दृष्टिकोण या निष्कर्ष के। हम मनुष्य के संपूर्ण उद्यम को देखना सीखते हैं। सौंदर्य की, सत्य की उसकी खोज, द्वंद्व से मुक्त जीवन जीने की शैली की खोज—इसके बारे में सीखते हैं। द्वंद्व ही उग्रता और उत्पात की जड़ है। अब तक हमारी शिक्षाप्रणाली ने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया है, परंतु इस स्कूल में हमारा उद्देश्य है यथार्थ और उसकी क्रिया को बिना किन्हीं पूर्वनिर्धारित धारणाओं, आदर्शों और सिद्धांतों के समझना, क्योंकि ये सब तो जीवन के प्रति, अस्तित्व के प्रति विरोधाभासी रवैये को बढ़ावा देते हैं।

इस स्कूल का सरोकार है स्वतंत्रता से, व्यवस्था से। स्वतंत्रता का तात्पर्य अपनी इच्छा, अपनी पसंद–नापसंद या स्वार्थ की अभिव्यक्ति नहीं है। वह सब तो अनिवार्यतः अव्यवस्था को ही जन्म देगा। चयन की स्वतंत्रता तो स्वतंत्रता नहीं, हालांकि ऐसा लग सकता है। न ही व्यवस्था का देखादेखी नकल या अनुकरण से कुछ लेना–देना है। 'चयन करना तो स्वतंत्रता को नकारना है' इस अंतर्दृष्टि के बिना व्यवस्था का आगमन संभव ही नहीं।

विद्यालय में हम संबंधों के महत्त्व के बारे में सीखते हैं, जो आसक्ति और मिल्कियत पर आधारित नहीं है। यहीं हम विचार की गतिविधि, प्रेम व मृत्यु के विषय में सीख सकते हैं, क्योंकि यही सब तो हमारा जीवन है। पुरातन काल से ही मनुष्य भौतिकवादी संसार से परे किसी तत्त्व की खोज में लगा है, ऐसा कुछ जिसे मापा नहीं जा सकता, जो पावन है, पवित्र है। इस संभावना की खोज, इसकी जाँच–पड़ताल इस स्कूल की आधारशिला है।

जाँच–पड़ताल ज्ञान की, स्वयं की, और उसकी संभावना की जो ज्ञान की सीमाओं के परे है—खोज का यह समग्र प्रवाह स्वतः ही एक आंतरिक, मनोवैज्ञानिक क्रांति लाता है, और यही अनिवार्यतः मनुष्यों के आपसी संबंध, अर्थात समाज में एक पूरी तरह से अलग व्यवस्था को जन्म देता है। इस सब की प्रज्ञापूर्ण समझ मनुष्यजाति की चेतना में एक गहरा परिवर्तन ला सकती है।

जे. कृष्णमूर्ति

© 1981 कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड

इसके अगले वर्ष मैं आर्य विहार में, जहाँ लंच आयोजित किये जाते थे, करीब दो हफ्तों के लिए ठहरा। यही वह घर था जहाँ एनी बेसेंट[8] और ऑल्डस हक्सले[9] भी कभी ठहरे थे, और यहीं पर 'के' के भाई नित्या का निधन हुआ था। यह एक साधारण–सा घर था जिसकी बहुत ध्यानपूर्वक संभाल की गई थी; चारों ओर कई फूलों और पेड़–पौधों से घिरे इस घर का वातावरण अद्‌भुत था। 'के' के देहांत के पश्चात कई वर्षों तक एक पुस्तकालय की तरह प्रयोग होने के बाद अब यह फाउंडेशन का स्टडी सेंटर *'द कृष्णमूर्ति रिट्रीट'* बना दिया गया है। पुस्तकालय—जहाँ आप वीडियो देख सकते हैं, ऑडियो टेप्स सुन सकते हैं और कोई भी पुस्तक पढ़ या खरीद सकते हैं—का स्थान बदल कर पास के नये अभिलेखागार में कर दिया गया है।

जब मैंने ओहाइ में कंट्री क्लब ड्राइव में घर खरीदा तो 'के' मुझसे वहाँ मिलने आए। यह 1985 की बसंत ऋतु की बात है; उनकी सेहत बहुत अच्छी नहीं थी, परंतु वह फिर भी पूरी तरह से सक्रिय थे। एक बार, हम घर के बाहर खड़े थे और मैंने उनसे पूछा कि क्या वह एक अतिथि–कक्ष के बारे में—जिसका वातावरण कुछ अप्रिय सा था—कुछ कर सकेंगे। उन्होंने हामी भरी, हमें बाहर रुकने को कहा और स्वयं उस कमरे में चले गए जिसके बारे में हमने उनसे कहा था। कुछ देर बाद वह बाहर आए, तो मैंने उनसे एक और कमरे की शुद्धि करने की विनती की, जैसा कि उन्होंने किया। अगले दिन उन्होंने बड़ी विनम्रता व मित्रभाव से पूछा : *क्या आपने कुछ महसूस किया* ? ''हाँ, बिल्कुल,'' मैंने उत्तर दिया, ''बहुत सुंदर; वह शांति, वह ग़ज़ब की खामोशी। परंतु फिर मुझे लगता है कि कहीं यह मेरी कल्पना तो नहीं।'' 'के' ने अपनी स्वाभाविक त्वरा से मेरी बाँह पकड़ी और कहा : *मुझे भी लगता है*। उस घर के बारे में जो बात उनको सबसे अच्छी लगी वह थी बगीचे में लगे पेड़।

---

8. एनी बेसेंट (1847–1933) 1907 से 1933 तक थियोसोफिकल सोसाइटी की अध्यक्षा थीं। 1909 में उन्होंने 'के' व उनके भाई नित्यानन्द को गोद लिया। वह एक प्रसिद्ध और अत्यंत प्रभावशाली वक्ता थीं; प्रारंभिक महिला आंदोलनों व साथ ही भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में भी वह सक्रिय रहीं। अपने अंतिम समय तक वह 'के' की निकट सहयोगी रहीं; 'के' उनका बहुत आदर करते थे।

9. ऑल्डस हक्सले, अंग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध लेखक—ब्रेव न्यू वर्ल्ड, आइलैंड, आइलैस इन गाज़ा, क्रोम यैलो, आदि के रचनाकार—1938 में कैलीफोर्निया में 'के' से मिले थे। उन्होंने 'के' को लिखने के लिए प्रेरित किया, और 'के' की पुस्तक फर्स्ट एण्ड लास्ट फ्रीडम (प्रथम और अंतिम मुक्ति) की भूमिका भी लिखी। 1963 में हक्सले के देहांत तक वह और 'के' गहरे मित्र रहे।

ओहाइ, कैलीफोर्निया में पाइन कॉटेज के नज़दीक अभिलेखागार की इमारत

'के' को लिलीफैल्ट्स[10] के ग्रैंड एवेन्यू वाले घर पर जाना अच्छा लगता था। ऐसी ही एक भेंट के दौरान वह अपने शरीर के विषय में बात करते हुए बोले कि इसका अंत तो बहुत पहले हो जाना चाहिए था। उनका कहना था कि (आसमान की ओर इशारा करते हुए) उन्होंने कुछ किया है।

अपने पाइन कॉटेज वाले घर पर भी कृष्णमूर्ति के.एफ.ए. के ट्रस्टियों और ओक ग्रोव के स्टाफ के लोगों के साथ चर्चाओं का आयोजन करते थे। एक बार, जब 'के' मैरी ज़िंबालिस्ट के साथ लॉस एंजीलीस से होकर लौटे थे, तो उसके एक दिन बाद हम कुछ

---

10. एर्ना और थिओ लिलीफैल्ट कृष्णमूर्ति को 1950 के दशक के आरंभिक वर्षों से जानते थे और वे के.एफ.ए. के संस्थापक ट्रस्टी थे। एर्ना ने के.एफ.ए. की संपत्ति को सुरक्षित बचा पाने में अहम भूमिका निबाही थी। थिओ का 1998 में और एर्ना का 2002 में देहांत हो गया।

गिने–चुने लोग वहाँ एकत्र हुए—लिलीफैल्ट्स और मार्क ली[11] भी वहाँ मौजूद थे। 'के' ने बताया : *हम इतना थक गए थे कि 9 बजे ही सोने चले गए*। उपस्थित लोग कुछ खामोश से हो गए, फिर उन्होंने कहा : *मगर एक साथ नहीं*।

आर्य विहार में 'के' के साथ एक भोजन संगोष्ठी में हममें से कुछ लोग—जिनमें राधा बर्निअर[12] भी शामिल थीं—कुछ विषयों पर चर्चा कर रहे थे, जैसे कि प्रदूषण, किसी पुस्तक जितने मोटे रविवार समाचार पत्रों के रूप में हो रहे कागज़ का अपव्यय, और कसाईखानों में दिखती वीभत्सता और खूँखारपना। कुछ देर हमारी चर्चा सुनने के पश्चात कृष्णमूर्ति बोले : *हाँ, यह सब वाकई भयावह है*। *परंतु यह गौण है*। और फिर बहुत ज़ोर देकर उन्होंने पूछा : *मनुष्य मनुष्य की हत्या क्यों करता है* ?!

ऐसी ही एक भोजन संगोष्ठी में मैंने 'के' को मनोवैज्ञानिकों के एक सम्मेलन का कार्यक्रम दिखाया, जो कि मुझे लौज़ान्न में रह रहे मेरे एक मनोवैज्ञानिक मित्र ने भेजा था। 'के' ने उसकी बहुत ध्यानपूर्वक जाँच की, जैसा कि वह हर उस वस्तु के साथ करते थे जो उनके ध्यान में लाई जाती थी। उनकी टिप्पणी थी : *कोरी बातों, शब्दों के अलावा कुछ नहीं, उनके अपने वास्तविक जीवन की कोई झलक नहीं*। इसी तरह कभी–कभी वह आधुनिक समय के दर्शनशास्त्र के विषय में भी कहते थे कि *वह सिवाय बातों पर बातें, शब्दों पर और शब्द, और किसी अन्य द्वारा लिखी गई किताबों पर और किताबें लिख देने से अधिक कुछ नहीं है*।

एक करोड़पति से मुलाकात का किस्सा 'के' ने बड़े मज़े में हँसते हुए सुनाया था। 1985 में जब 'के' वॉशिंगटन डी.सी. में थे और केनेडी सेंटर में दो–दिवसीय जनसभाओं को संबोधित कर रहे थे तब उनसे निवेदन किया गया कि वह एक करोड़पति सज्जन से भेंट करें, इस उम्मीद में कि शायद वह सज्जन फाउंडेशन अथवा कैलीफोर्निया में स्कूल के लिए कुछ धनराशि का सहयोग दे दें। बैठते ही उन करोड़पति सज्जन ने कहा : ''मैं जीसस क्राइस्ट में विश्वास रखता हूँ।'' 'के' ने जवाब में उनसे पूछा : क्यों विश्वास रखते

---

11. मार्क ली ऋषि वैली में जूनियर स्कूल के हेड रहे और ओक ग्रोव स्कूल के पहले निदेशक बने। इस समय वह के.एफ.ए. के कार्यकारी निदेशक हैं, और ओहाइ में एडविन हाउस नाम से उनकी अपनी प्रकाशन संस्था भी है।
12. राधा बर्निअर 'के' को अपने शुरुआती सालों से जानती हैं और 1980 से थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा हैं। वह कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया (1928 में स्थापित) की ट्रस्टी भी हैं।

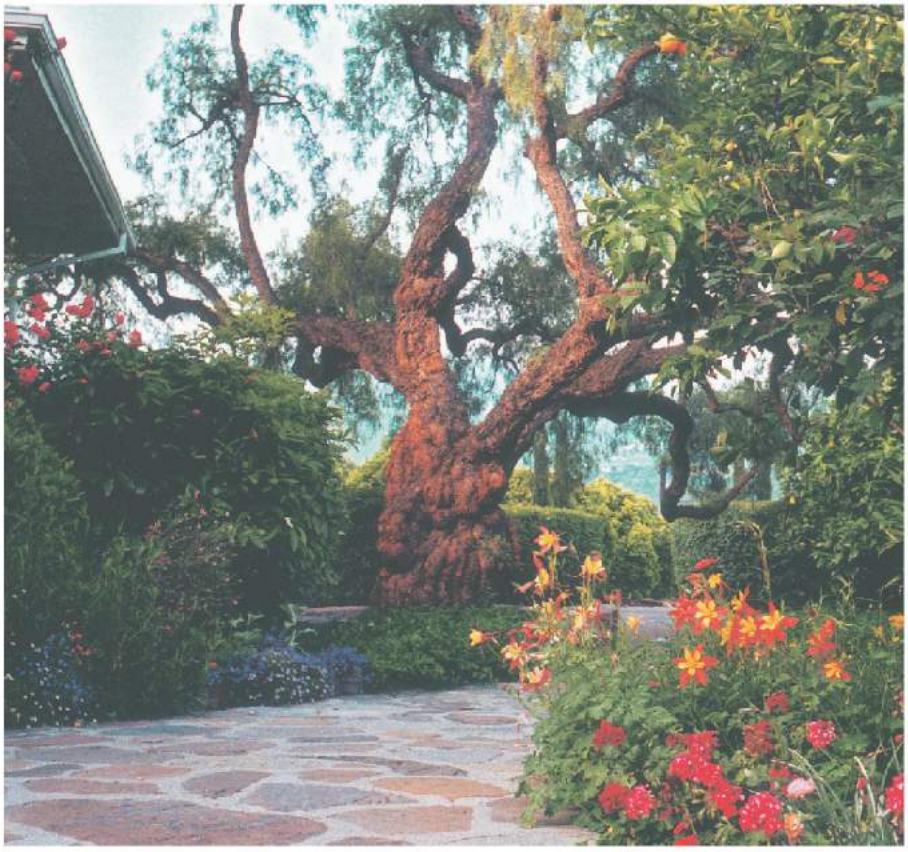

कैलीफोर्निया में 'के' के निवासस्थान पाईन कॉटेज के सामने लगा पैपर वृक्ष

हैं आप? और फिर उनके साथ इस विषय पर चर्चा करने लगे कि क्यों लोग अपने विश्वास, अपनी आस्था में सुरक्षा खोजते हैं, उनकी इस आस्था का वास्तविक और गहरा कारण क्या है। यह बताते हुए कि कैसे उन सज्जन का चेहरा पीछे वाली ईंट की दीवार की तरह सख्त होता चला गया, 'के' हँस पड़े। हालाँकि उस व्यक्ति की पत्नी कुछ खुले दिमाग की प्रतीत हो रही थीं, फिर भी धनराशि मिलने की कोई संभावना नहीं थी।

वॉशिंगटन में, जो कि महाशक्तिशाली देश की राजधानी है, कृष्णमूर्ति ने खुले आम कहा था : *सत्ता किसी भी रूप में भद्दी है*। एक अन्य समय, भारत में उन्होंने मुझसे कहा था कि उन्हें दिल्ली का माहौल पसंद नहीं क्योंकि वह शहर सत्ता का केंद्र है।

ब्रॉकवुड पार्क

1984 जून के आरंभ में, 'के', मैरी ज़िंबालिस्ट और मैंने लॉस एंजिलीस से लंदन के लिए उड़ान भरी और फिर ब्रॉकवुड पहुँचे। फाउंडेशन ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि 'के' अपनी अवस्था के कारण प्रथम श्रेणी में ही यात्रा करें। इसी उड़ान की प्रथम श्रेणी में जगह न पा सकने की वजह से मैंने बिज़नेस क्लास में ही स्थान आरक्षित किया। 'के' ने जब इसके बारे में सुना तो बोले, *आपके इस टिकट के बारे में कुछ करते हैं*। मैं उनका आशय नहीं समझ पाया और जब हम एयरपोर्ट पहुंचे मैं इस बारे में भूल चुका था। मैं अभी काउंटर पर ही था कि 'के' और मैरी आगे निकल गए। जैसे ही मैं उनके पीछे चलने के लिए मुड़ा कि एक परिचारिका मेरे पास दौड़ती हुई आई और उसने मुझे 'के' के ठीक पीछे वाली प्रथम श्रेणी की सीट का टिकट दे दिया। मुझे इसकी कीमत के अंतर को भी नहीं देना पड़ा था।

1960 के दशक के आखिरी सालों या 1970 के दशक के शुरुआती सालों से, जब ब्रॉकवुड एक स्कूल के रूप में स्थापित हो चुका था, 'के' का अपनी यात्रा का क्रम कुछ इस तरह से हुआ करता था : ओहाइ की वार्ताओं के बाद वह मई के मध्य में ब्रॉकवुड जाते और स्कूल सत्र की समाप्ति के तुरंत बाद ही जून के अंत तक वह ब्रॉकवुड से वार्ताओं के लिए ज़ानेन रवाना होते; सितंबर में ब्रॉकवुड में होने वाली वार्ताओं के लिए वापस लौटते; नवंबर के शुरू में वह भारत स्थित अपने सभी स्कूलों में जाते, मद्रास, बंबई और राजघाट, वाराणसी में वार्ताएं करते; और फिर कुछ एक दिनों के लिए ब्रॉकवुड में रुकने के बाद—जहाँ वह पूर्ण ऊर्जा से भरपूर रहते थे तथा छात्रों एवं खासतौर से शिक्षकों व अन्य सहकारियों के साथ स्कूल के कार्य को लेकर बड़ी उत्कटता से संवाद करते थे—फरवरी में वह ओहाइ लौट जाते। तब वही सिलसिला फिर से शुरू होता। पिछले साल जब वह भारत और ओहाइ की यात्रा के बीच कुछ दिनों के लिए ब्रॉकवुड में रुके थे तो वहाँ काफी ठंड थी तथा असामान्य बर्फबारी के बावजूद वह टहलने निकल गये, हालाँकि बाद में वह ठंड से नीले पड़ गये थे। मैंने उनसे कहा कि अधिकांशतः वह जहाँ कहीं भी वसंत के समय ही पहुंचते हैं, अतः उनके लिए निरंतर वसंत ही रहता है (जैसे ऋषिवैली में दिसंबर में वसंत होता है और ज़ानेन की ऊँची पहाड़ियों में वसंत जून के महीने में आता है)। वह इस बात पर मुस्कुरा दिये थे।

जब हम कैलीफोर्निया मरुस्थल के ऊपर से उड़ान भर रहे थे तो नीचे की ओर सूर्यास्त का एक भव्य दृश्य नज़र आ रहा था। पहाड़ सभी रंगों और छटाओं में चमक रहे थे, गहरे बैंगनी रंग से लेकर हल्के गुलाबी रंग तक। हमें एकदम सीधी जाती सड़कें तथा रेगिस्तान से गुज़रतीं रेलवे लाइनें नज़र आ रही थीं। जब हम इंग्लैंड पहुंचे तब सब तरफ हरियाली छायी थी। 'के' उत्साह से बोल उठे; *देखो तो सही ! क्या गज़ब की हरियाली है !*

ब्रॉकवुड में, मैं पश्चिमी हिस्से के बाल्कनी वाले एक छोटे से कमरे में रुका था। जब 'के' ने पहली बार मुझे वह कमरा दिखाया तो कहा था, *यहाँ आप घर जैसा महसूस कर सकते हैं*। बाल्कनी में जाने के लिए खिड़की को लांघना पड़ता था। कई पीढ़ियों की गर्द साफ करके (इस मूल्यांकन से 'के' सहमत थे) और फिर कई कंबलों और कोट में खुद को लपेट कर मैंने सुबह–सुबह योगाभ्यास किया। 'के' को सभी कुछ मज़ेदार लग रहा था और उस बाल्कनी को उन्होंने अच्छी तरह से देखा। एक बार किसी ने शीर्षासन करते वक्त रेलिंग से ऊपर की ओर दिख रहे मेरे पैरों की तस्वीर खींच ली थी।

'के' ने जीवनपर्यंत योगाभ्यास किया। वह इस बात पर ज़ोर देते थे कि यह शरीर के लिए अच्छा है, पर इसका आध्यात्मिक जागृति से कुछ भी लेना–देना नहीं है। वह यह भी कहते थे कि योग पूर्वकाल में पूर्णतया भिन्न था और कुछ ही लोगों के लिए था।

जब 'के' मुझे कुछ योगासन दिखाते तो कभी–कभी मुझे यह जानने की उत्सुकता होती थी कि योगाभ्यास करते समय उनकी मनोदशा कैसी होती होगी। ऐसा लगता था कि उस दौरान वह व्यक्ति मानो अनुपस्थित हो जाता था परंतु साथ ही उनकी एक विराट उपस्थिति का भी एहसास होता था। बाद में मुझे ख्याल आया कि संभवतः वह उस अवस्था में होते हैं जिसे उन्होंने ध्यान कहा है—एक ऐसी स्थिति जो किसी जानबूझ कर की गयी क्रिया या अभ्यास से नहीं लायी जा सकती।

रोज़ सुबह ठीक सात बजे हम योगाभ्यास करते थे जिसमें विभिन्न प्राणायाम, आँख, गर्दन और कंधे के व्यायाम होते थे तथा एक ही स्थान पर जॉगिंग और कूदने के बाद यह समाप्त होता था। (तत्पश्चात हम उन व्यायामों के बारे में लिख लेते थे ताकि उन्हें हम स्वतः ही कर सकें।) नवासी वर्ष की अवस्था में भी 'के' का यह सब करना जारी था। अपनी पूरी सोच और व्यवहार में 'के' बेहद सक्रिय और युवा थे, एक युवक की ऊर्जा लिए, और मुझे उनकी उम्र का एहसास ही नहीं रहता था। मैंने उन्हें यह सुझाव दे डाला था कि हमें शाम को भी कुछ और योगाभ्यास करना चाहिए, बिना यह सोचे कि इससे उन्हें थकान हो सकती है।

प्राणायाम के अभ्यास में ही आधा घंटा चला जाता था और जब 'के' ने कहा कि वह मुझे प्राणायाम सिखाएंगे तो साथ ही यह भी जोड़ दिया था कि *तब आप सही में सैर कर सकेंगे*। वास्तव में, मैं पहले से ही लंबी पदयात्राओं, पर्वतारोहण और ऑल्प्स की बर्फीली पहाड़ियों पर 'स्की–यात्राओं' का भी अभ्यस्त रहा था। रूझमों में पिछली गर्मियों के दौरान जब मैं 'के' के साथ था तब दिन की गर्मी से बचने के लिए भी मैं सुबह थोड़ा जल्दी ही निकल जाता। जब मैं भोजन के लिए लौटता तब 'के' मुझसे पूछते, *कितने घंटे लगाये* ? मैं उन्हें तीन, चार या पांच बताता; वह हमेशा ही प्रभावित होते और अंततः उन्होंने कहा, *यह सज्जन अपने अंतिम दिनों तक पैदल सैर करते रहना चाहते हैं*।

एक दिन सुबह योगाभ्यास के बाद 'के' ने अपने कमरे के पर्दे खोले तो दूर की पहाड़ियों और विस्तृत मैदान का शानदार दृश्य हमारे सामने था। उस सौंदर्य की ओर इशारा करते हुए उन्होंने मुझसे लैटिन में कहा, *बेनेदिक्तुस एस्त क्वी वेनीत इन नोमिने दोमीनी*। उन्होंने मुझे इस वाक्य का अनुवाद करने के लिए कहा और मैंने अनुवाद इस तरह से किया, ''धन्य है वह जो ईश्वर की राह में आता है।'' जब मैंने 'ईश्वर' शब्द का उच्चारण किया तब उन्होंने इसे अपनी भंगिमा से नकार दिया। 'के' अक्सर ज़ोर देकर कहते थे कि ईश्वर को जब भी मनुष्य का जामा पहना दिया जाता है तो वह उसी के मन का आविष्कार भर होता है।

एक दूसरी सुबह जैसे ही मैं योगाभ्यास के लिए पहुँचा तो 'के' के कमरे में अभी तक अंधेरा था और वह बिस्तर में ही थे। मेरे दरवाजा खोलने पर वह तुरंत जग गए और बोले, *आज मैं सारा दिन बिस्तर में ही रहूंगा*। मैंने जवाब दिया, ''शुभ रात्रि'' और वह हँस पड़े। एक दिन पहले वह लंदन में थे और यह शहर हमेशा ही उन्हें थका देता था। एक बार लंदन से वापसी के दौरान उनसे सीढ़ियों पर मिलना हो गया और हम दोनों ही समझ नहीं पा रहे थे कि आदमी ऐसी जगह जाता क्यों है। उन्होंने कहा कि कितनी राहत महसूस हो रही है यहाँ से बाहर निकल पाने में, मुझे भी ठीक ऐसा ही लग रहा था।

एक बात जो मेरे देखने में आयी और जो मुझे विस्मित करती थी, वह थी : 'के' को लोगों के साथ नज़दीकी के एहसास के ज़रिये एक सहज आह्लाद होता था, जैसे हाथों को पकड़ना, गले लगाना, बस ऐसे ही एक हल्का सा स्पर्श जो जाने कितने दर्द दूर कर दिया करता। गले लगा कर स्वागत करना या विदा करना मेरे व्यवहार में नहीं था। मैं फ्रेंच या स्विस रिवाज़ के अनुसार गालों पर चुंबन देने का अधिक अभ्यस्त था। मैंने 'के' को कभी चुंबन देते नहीं देखा, वह गले लगाया करते थे। यह चूंकि मैं ठीक ढंग से करना नहीं जानता था, इसीलिए कभी–कभी हम उलझ जाते थे। एक बार राजघाट में मैंने 'के'

वसंत ऋतु में ब्रॉकवुड पार्क में स्थित कृष्णमूर्ति सेंटर का दृश्य

को माइकल क्रोहनेन से मिलते देखा था, जो कि अब मेरा एक घनिष्ठ मित्र है। पहले तो 'के' ने उसे वहाँ देखकर आश्चर्यचकित हो बाहें फैला दीं और फिर उसे गले लगा लिया, वह 'के' से करीब दूना लंबा और तिगुना बड़ा था। जैसा कि आप इस पुस्तक के पृष्ठ भाग के चित्र में देख सकते हैं कि 'के' और मैं करीब करीब एक ही आकार के थे, केवल उनके हाथ और पांव मुझसे लंबे थे।

मुझे अपना वह अचरज अभी तक याद है जब 'के' ने ब्रॉकवुड में प्राणायाम की कुछ विधियों से मेरा परिचय कराया था। उन्होंने अपनी सांस की गति का एहसास कराने के लिए अपनी छाती के निचले हिस्से पर हाथ रखने को मुझे कहा। उनकी सांस इतनी उन्मुक्त और गहरी थी कि ऐसा लगता था कि उनके फेफड़े पूरे पेट को सांस से भर देंगे।

ब्रॉकवुड में 'के' अपनी प्लेटें स्वयं ही साफ करते थे। जब कोई उनकी मदद करना चाहता तो वह जवाब देते कि *यह काम उनका है*। वह अपने जूते भी खुद ही साफ करना

चाहते थे। एक मौके पर मैंने उन्हें बड़े ही उत्साह से सीढ़ियों की रेलिंग को पॉलिश करते देखा था। उन्होंने बताया : *भारत में लोग मुझे यह करने की अनुमति कभी नहीं देंगे*। भारत में उन्हें नौकरों की सेवा लेनी ही पड़ती थी। ऋषिवैली में पहले वह एक बहुत ही छोटे कमरे में ठहरे थे और जिसमें उन्हें कोई दिक्कत नहीं लगी। *मैं तो बस खिड़की से बाहर देखता रहता था,* उन्होंने मज़ाक किया।

कई बार ऐसा होता था कि मैरी और 'के' तथा अन्य लोगों के साथ मैं ब्रॉकवुड के वेस्ट विंग वाली छोटी रसोई में खाना खाता था। ऐसे ही एक मौके पर चर्चा का विषय था विभिन्न राष्ट्रों में पायी जाने वाली स्वभावगत विशेषता, और उपस्थित सभी लोगों ने अपना–अपना नज़रिया बताया। जब बात ब्रिटेन की आयी तो मैंने कहा, 'सुथरा व्यवहार'; 'के' वहीं बगल में बैठे थे और उन्होंने करीब होकर मुझे कहा, *लेकिन भारतीयों के साथ नहीं*।

वह एक बहुत ही विनम्र इन्सान थे तथा अपने व्यक्तिगत व्यवहार में बहुत ही सज्जन और शिष्टाचारी। महिलाओं के वह विशेष पक्षधर और खास ध्यान रखने वाले थे। कई बार ऐसा तो हुआ है कि वह किसी के प्रति धीरज खो बैठे हों, परंतु वह किसी का दिल कभी नहीं दुखाना चाहते थे, न ही किसी को सीधे तौर पर कुछ करने का या न करने का निर्देश देते थे। उनका होना प्रेम से ओतप्रोत था। वह जो भी समस्या सामने है उसके अधिक गहरे कारणों की ओर इंगित करते और उस व्यक्ति से अनुरोध करते कि वह स्वयं ही पता लगाए कि उसके लिए क्या करना उचित होगा। उनके द्वारा बोले गए हर शब्द से व्यक्ति कुछ न कुछ सीख सकता था।

1984 में ब्रॉकवुड स्कूल में दिशा–निर्देश संबंधी काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। स्टाफ में एक समूह का दूसरे समूह से द्वंद्व चलता रहता था नतीजतन कुछ लोग अंततः स्कूल छोड़कर चले जाते थे। 'के' ने इस समस्या के समाधान में अपनी पूरी ऊर्जा लगायी। कई बार उन्होंने सारे स्टाफ से बातचीत की। एक बार तो उन्होंने वेस्ट विंग के दरवाज़े बंद कर देने की और फिर कभी स्कूल में पैर न रखने की धमकी तक दे डाली थी। उन्होंने छात्रों से भी बातचीत की और छात्रों ने उन्हें बताया कि शिक्षक और अन्य कर्मचारी अपने आपसी द्वंद्व में उलझे रहने की वजह से उन्हें बहुत कम समय दे पा रहे थे, यह 'के' के लिए वाकई चौंकाने वाली बात थी। तब शिक्षकों से अप्रत्याशित रूप से सख्ती से बात करने के बाद उन्होंने मुझसे कहा, *मैंने इस तरह से पहले कभी बात नहीं की*। इस सब के दौरान हम कहीं न कहीं टकरा ही जाते थे पर उस मीटिंग के तुरंत बाद

असेंबली हॉल के बाहर भीड़ में मुझ पर उनकी नज़र पड़ गयी, उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और हम एक छोटी सी सैर पर चल दिये।

वेस्ट विंग के अपने कमरे से, छोटी रसोई में चल रही बातचीत मुझे कभी–कभी सुनाई दे जाती थी; स्कूल के साथ भोजन करने के मौकों को छोड़कर 'के' को वहाँ खाना खाना पसंद था। उन शामों के दौरान वहाँ 'के' की स्कॉट फोर्ब्स[13] से खूब बातचीत होती थी जिसके बारे में उन्होंने बाद में बताया कि यही चर्चा स्कॉट को प्रिंसिपल बनाने की पूर्वतैयारी थी।

'के' के संग–साथ, ब्रॉकवुड के चतुर्दिक प्राकृतिक सौंदर्य की अनुभूति और अधिक गहरी होती जाती थी। सैर करते वक्त वह बहुत ही कम बातें करते थे। घास के मैदानों को पार करते वक्त वह इस बात पर ज़ोर देते थे कि शॉर्टकट का इस्तेमाल न किया जाए। वह कहते थे, *जल्दी मत मचाओ, समय की बचत की कोशिश मत करो*।

प्रकृति की हर शै के साथ उनका एक प्रगाढ़ संबंध था। उनका कहना था कि वृक्षों की जड़ों में एक ध्वनि होती है बस हम उसे सुन नहीं पाते। एक बार ब्रॉकवुड के मैदान में एक वृक्षसमूह के पीछे की ओर से जाते वक्त मैं पांच लंबे चीड़ के पेड़ों के बीच से होकर निकलने ही वाला था, तभी उन्होंने मेरी बांह पकड़ ली और बोले, *नहीं, वहाँ से नहीं, हमें उनकी शांति भंग नहीं करनी चाहिए*।

ब्रॉकवुड में एक अन्य सैर के दौरान मॉर्टन के फॉर्महाउस से वापस आते समय तूफान के आसार हो रहे थे। देखते ही देखते वहाँ बादल गरजने और बिजली चमकने लगी तथा मैं परेशान हो गया क्योंकि हम बिल्कुल खुली जगह में थे। तभी मुझे एहसास हुआ कि 'के' प्रकृति के इस विक्षोभ का आनंद ले रहे थे।

'के' कहा करते थे कि जब आपकी सभी इंद्रियां सजग रहती हैं तभी आप प्रज्ञावान होते हैं। मैंने कई अवसरों पर देखा था कि वह प्रकृति के प्रति कितने संवेदनशील थे। एक बार बुशियौं की झील के किनारे टहलते वक्त मैंने उन्हें सूंघने के लिए थाइम का फूल उठाकर दिया। वह वाकई उछल पड़े!

---

13. स्कॉट फोर्बस ने 1974 में ब्रॉकवुड पार्क में कार्यभार संभाला और वीडियो विभाग की स्थापना की। 1985 से 1994 तक वह ब्रॉकवुड स्कूल के प्रधानाचार्य रहे; वह के.एफ.टी. के ट्रस्टी थे।

एक बार भारत में भी कुछ ऐसा हुआ जिससे जीवजगत के साथ उनके गहरे सहसंवाद की झलक मिलती है। राजघाट से सारनाथ के रास्ते पर, जिसके लिए कहा जाता है कि कभी बुद्ध भी उस पर चल कर जाते थे, एक बड़ी अमराई थी जिसमें अब फल नहीं लग रहे थे। हालाँकि आम मान्यता थी कि इसी स्थल पर बुद्ध ने कभी विश्राम किया था, पर अब इन पेड़ों को काटने का इरादा बन चुका था। 'के' ने विस्तार से बताया कि कैसे एक दिन वह उन पेड़ों के पास चल कर गए और उनसे कहा, *सुनो, यदि तुम कोई फल नहीं दोगे तो ये लोग तुम्हें काटने जा रहे हैं*। अगले साल उनमें वास्तव में फल लग गए।

'के' को बाग में काम करना अच्छा लगता था। ख़ासतौर से अपने शुरुआती दिनों में ओहाइ में उन्होंने काफी बागबानी की थी। जब मैंने उन्हें बुशियौं में अपना बाग दिखाया जिसे मैंने खुद ही तैयार किया था तो वह बोले, *अपनी उंगलियों के बीच मिट्टी को महसूस करना अच्छा है*।

जब भी मैंने कैलीफोर्निया से ब्रॉकवुड की यात्रा की तो आठ घंटे के समय के फर्क और मौसम के बदलाव की वजह से मुझे कुछ देर के लिए थकान रहती थी, तब कभी–कभी बाग में एक देवदार के पेड़ के नीचे लेट कर मैं हल्की सी झपकी ले लेता था जहाँ सूरज की ऊष्मा मुझे बहुत ही आनंद देती थी। मैंने 'के' को इस बारे में बताया और उन्होंने इसका जवाब दिया : *ओह, मैं तो वहाँ बाहर सो ही नहीं सकता, वहाँ तो बहुत कुछ है देखने के लिए*। और उन्होंने अपनी बड़ी–बड़ी आँखें दाएं से बाएं गोल–गोल घुमाईं ठीक वैसे ही जैसे कि वह आँखों के व्यायाम के समय किया करते थे। उनकी आँखों की रोशनी इतनी अच्छी थी कि उन्हें जीवनपर्यंत पढ़ने या किसी और काम के लिए चश्मे की कभी ज़रूरत नहीं पड़ी।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में ब्रॉकवुड में साधारणतया 'के' अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों के साथ सैर पर जाते थे—और वह सुनिश्चित करते कि डौरोथी सीमौन्स भी साथ में आ रही हैं—पर कभी–कभी सिर्फ हम दोनों ही होते थे। ऐसी ही एक सैर पर आगे जाने के लिए एक बाड़ को लांघना होता था। इस बार मैं पहले ही इसे फांद कर दूसरी तरफ आ गया और 'के' का इंतज़ार करने लगा, 'के' को कुछ दिनों से बाड़ को लांघने में परेशानी सी हो रही थी। थोड़ा अधीर होते हुए मैंने सोचा कि बाड़ पार करने में इन्हें खासा वक्त लग जाता है। और जैसे कि उन्होंने मेरे विचार पढ़ लिए हों, जवाब आया : *मुझे उम्मीद है, मेरी उम्र में आप इस बाड़ को इतनी अच्छी तरह से पार कर पाएंगे*।

दो बचे हुए देवदार वृक्ष, जिनमें से एक गिरने की कगार पर है; ये वृक्ष ब्रॉकवुड पार्क में सैर करते समय दिखाई देने वाले उन कई देवदार वृक्षों में से हैं जिनके बारे में 'के' कहते थे कि हमें उन्हें छेड़ना नहीं चाहिए।

बहुत से लोग जो 'के' की वार्ताओं में आते थे, कहते थे कि उन्होंने हर बार उनको उन्हीं मुद्दों पर चर्चा करते सुना जिसमें उस वक्त उन लोगों की गहरी दिलचस्पी थी। 'के' तो अक्सर हज़ारों लोगों को संबोधित करते थे, तो सवाल यह उठता है कि ऐसा कैसे हो सकता है। क्या वही समस्या हर किसी के दिमाग में थी? क्या यह समान चेतना थी जिसमें हम सभी भागीदार हैं? या 'के' किसी एक व्यक्ति की समस्या से जुड़ जाते थे जो उसे बड़ी शिद्दत से महसूस कर रहा होता था। वास्तव में, ऐसा कहा जा सकता है कि प्रत्येक समस्या अपने में हर दूसरी समस्या को समेटे रहती है, किसी होलोग्राम की तरह।

मैं 'के' की दूसरे के विचारों को पढ़ लेने की क्षमता का अनुभव कर चुका था और अन्य लोगों ने भी इसका ज़िक्र किया है। एक बार मद्रास में, 'के' अपने चार–पांच पुराने मित्रों के साथ, जिनमें से कुछ फाउंडेशन के ट्रस्टी भी थे, और मैं अड्यार के समुद्रतट पर

टहल रहे थे। वापसी पर मैं 'के' के पीछे–पीछे यह सोचता हुआ चला आ रहा था कि और लोगों के मन में यह अवश्य ही आ रहा होगा कि 'के' मुझ नव आगंतुक पर ज़रूरत से ज़्यादा ध्यान दे रहे थे, उसी वक्त वह मेरी ओर पलटे और बोले, *मैं उस तरीके से नहीं सोचता*।

एक दूसरी घटना ब्रॉकवुड के भोजनकक्ष में घटी थी। एक पत्रकार ने मुझसे पूछा ही था कि मैं आजीविका के लिए क्या करता हूँ। इस प्रश्न से मैं झुंझलाया और मैं उसे कुछ तीखे ढंग से जवाब देने ही वाला था कि मैं कुछ भी नहीं करता, तभी 'के' जो कि मेरे साथ ही बैठे हुए थे मुझसे पहले ही बोल पड़े, *ये टूटियाँ बनाते हैं*।

एक और मौके पर, ऋषि वैली में दक्षिण अफ्रीका के विश्वविद्यालय के एक भारतीय लेक्चरार हमारे साथ टेबल पर बैठे थे। 'के' उस देश की स्थिति से संबंधित सीधे प्रश्न पूछ रहे थे तथा अलग–अलग तरह से उनसे यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि वह उस बारे में निजी तौर पर क्या महसूस करता है, पर हमारे मेहमान बारीकी में जाने से कतरा रहे थे। तब अचानक 'के' ने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा, *मिस्टर ग्रोहे दक्षिण अफ्रीका के हालात को बर्दाश्त नहीं कर सके*। मुझे बड़ा अचरज हुआ।

मानता हूँ कि मैंने उन्हें यह बताया था कि मैं वहाँ काम कर चुका था। लेकिन मैंने उन्हें यह नहीं बताया था कि मैं एक ही साल वहाँ काम कर पाया, उससे अधिक मेरी बर्दाश्त से बाहर था और मैं वापिस यूरोप चला आया, जबकि मेरे माता–पिता दक्षिणी अफ्रीका में एक खूबसूरत मकान खरीदने जा रहे थे और उनका वहाँ कम से कम कुछएक साल बिताने का इरादा था। युद्ध के बाद मेरे पिता रूसियों के भय की वजह से अपने परिवार को जर्मनी से वहाँ ले आए थे। एक अवसर पर मैंने 'के' से जर्मन लोगों के मन में रूसियों को लेकर जो भय था उसके बारे में चर्चा की थी। उन्होंने कहा कि उन लोगों के चिंतित होने की वजह वाजिब थी।

एक बार जब चेकोस्लोवाकिया के प्रकाशक और अनुवादक याद्री प्रोकोर्नी 'के' का साक्षात्कार ले रहे थे तो मैं भी वहाँ मौजूद था। प्रोकोर्नी ने 'के' से पूछा कि यदि वह एक साम्यवादी देश में फंस जाते तो वह क्या करते। 'के' ने उत्तर दिया कि तब *वह केवल उन जैसे मित्रों के साथ ही बातें कर पाते*। अपनी बातचीत और जनवार्ताओं में 'के' बार–बार साम्यवादी तानाशाही के दमन और अत्याचार की ओर संकेत करते। वह विश्व राजनीति सहित तमाम विषयों में दिलचस्पी रखते थे। उन्हें टी.वी. पर समाचार और राजनीति से जुड़े कार्यक्रम देखना पसंद था, और अपनी मृत्युशय्या पर भी उन्होंने जानना चाहा था कि *दुनिया में क्या हो रहा है।*

ब्रॉकवुड पार्क, हैंपशायर, इंगलैंड में बनी वाटिका का मुख्य द्वार

परंतु उन्हें युद्ध के बारे में बातें करना पसंद नहीं था। एक दिन 'के', मैरी ज़िंबालिस्ट और मैं, कार से ब्रॉकवुड के पास के शहर विन्चेस्टर जा रहे थे। रास्ते में हम मैदान के बीच में एक चौड़े बड़े गर्त से होकर गुज़रे, जिसके बारे में मैरी ने बताया कि यह वह स्थान था जहां नारमंडी की विजय से पहले आइज़नहॉवर ने मित्र–देशों की फौज को संबोधित किया था (यह जगह अब एक रॉक कन्सर्ट स्थल के रूप में प्रसिद्ध है)। 'के' ने थोड़ी बेसब्री से बात को दरकिनार करते हुए कहा कि *युद्ध काफी पहले ही खत्म हो चुका है*। उन्हें खूब मालूम था कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान क्या हुआ था और वह अक्सर इंगित करते थे कि उस युद्ध और अन्य युद्धों की क्रूरता आज भी जारी है। वह इस बात पर ज़ोर देते थे कि राष्ट्रीयता दुनिया में विभाजन और द्वंद्व का व्यापक कारण है। अपने बारे में 'के' ने अक्सर कहा है : *मैं भारतीय नहीं हूँ*।

एक और किस्सा जो 'के' ने हमें सुनाया वह 1930 में हुई घटना के बारे में था। वह रोम में थे और सेंट पीटर स्क्वायर गए थे, तभी पोप पालकीनुमा कुर्सी में वहाँ से गुज़र

रहे थे। पोप ने पालकी रुकवाई और थोड़ा आगे की ओर होकर 'के' से पूछा, ''क्या तुम भारतीय हो?'' 'के' ने जवाब दिया, जी, *माना तो यही जाता है कि मैं भारत का हूँ*। फिर पोप ने उनसे कहा, ''मुझे तुम्हारा चेहरा अच्छा लगा।'' और इसके बाद वह अपनी पालकी में पीछे की टेक लेकर बैठ गए तथा पालकी आगे निकल गयी।

हालाँकि 'के' ने कभी–कभी ज़िक्र किया है कि उनका पालन–पोषण *अंग्रेजी समाज के अभिजात वर्ग द्वारा हुआ,* उन्होंने इस समाज की घुटन की ओर भी ध्यान दिलाया है। एक बार उन्होंने मेरे कफलिंक्स पर ध्यान दिया और कहा कि उनके और उनके भाई के पास भी कफलिंक्स और टाई पिंस थे। ओहाइ में जब वे दोनों बाहर सैर को निकलते थे तो उन्हें घर पर ही छोड़ जाते थे, एक बार जब वे वापस लौटे तो उन्होंने पाया कि वे गायब थे—चोरी हो गए थे। वे बड़े खुश हुए कि चलो अच्छा हुआ।

परंतु ऐनी बेसेंट के बारे में, जो अंग्रेज़ थीं और जिन्हें वह माँ की तरह मानते थे, वह कहा करते थे कि उन्होंने भारत के लिए महात्मा गांधी से भी अधिक काम किया था। गांधीजी का उदाहरण देते हुए वह कहते थे कि यदि कोई दूसरों को अपनी इच्छा का अनुपालन करने के लिए बाध्य करता है, चाहे ऐसा अनशन जैसे तथाकथित शांतिपूर्वक ढंग से ही क्यों न किया जाए, हिंसा का ही सहारा ले रहा होता है। राजनीतिक उद्देश्यों के लिए की गयी भूख हड़ताल हिंसा ही है।

'के' असाधारण रूप से गंभीर व्यक्ति थे परंतु वह खुलकर हँसने और अच्छे मज़ाकिया किस्से सुनाने में खासतौर से आनंद लेते थे। ऐसे कई सारे पलों को हमने साथ–साथ जिया है। बहुत से मज़ेदार किस्सों में से दो यहाँ प्रस्तुत हैं, जिन्हें वह कभी–कभी सुनाया करते थे।

तीन ऋषि हिमालय पर कहीं एकांत में ध्यान लगाये बैठे थे। दस सालों के बाद, पहला बोला : कितनी अद्‌भुत सुबह है यह ! और फिर वे अगले दस सालों तक के लिए चुप हो गए। तब दूसरे ऋषि ने कहा : पानी कभी भी बरस सकता है। इसके बाद वे फिर अगले दस सालों तक के लिए मौन हो गए। और तब तीसरे ने कहा : आप दोनों बातें करना कब बंद करेंगे ?

सेंट पीटर, धरती पर क्या हो रहा है यह ईश्वर को दिखा रहे थे और पहली चीज़ जो वह देखते हैं कि मनुष्य सुबह से रात तक परिश्रम और एड़ी–चोटी का जोर लगा कर

ब्रॉकवुड पार्क, हैंपशायर, इंग्लैंड के निकट

कड़ी मेहनत कर रहा है। ईश्वर आश्चर्यचकित हो उठते हैं और सेंट पीटर से पूछते हैं कि नीचे उन लोगों के साथ यह क्या मामला है ? सेंट पीटर जवाब देते हैं, क्या आपने ही उन्हें नहीं बताया है कि आदमी को रोज़ी–रोटी अपना खून–पसीना बहाकर कमानी चाहिए ? ईश्वर कहते हैं, पर मैं तो मज़ाक कर रहा था। तभी उन्हें एक दूसरा दृश्य नज़र आता है : कुछ लोग उत्सव की पोशाक में सजे–धजे खाने पर बैठे हुए हैं, दावत चल रही है, मेज़ पर पीने और खाने की तमाम लज्ज़तदार चीज़ें हैं; ये लोग कैथोलिक धर्माध्यक्ष और बिशप हैं। ईश्वर के इस प्रश्न पर कि ये कौन लोग हैं, सेंट पीटर उत्तर देते हैं, माई लॉर्ड, ये वो लोग हैं जिन्हें यह बात समझ में आ गयी थी कि आप तो सिर्फ मज़ाक कर रहे थे।

ब्रॉकवुड में एक बार 'के' ने ओल्ड टेस्टामेंट पढ़ी। जब मैंने उनसे पूछा कि यह उन्हें कैसी लगती है, तो उन्होंने जवाब दिया, *हाँ यह मुझे पसंद तो है पर उन परीकथाओं की वजह से नहीं जो इसमें हैं, बल्कि इसकी भाषा, इसकी शैली के कारण।* वह समय काटने

के लिए जासूसी कहानियां पढ़ने में भी आनंद लेते थे तथा सुगठित कथानक की सराहना भी करते थे।

'के' ने एक बार पूछा, *जब दो अहंकारी आपस में शादी कर लेते हैं तो उसका नतीजा क्या होता है* ? उन उपस्थित लोगों की छोटी सी, अपेक्षापूर्ण खामोशी के बाद, उन्होंने खुद ही अपने प्रश्न का उत्तर दिया, "दो अहंकारी, बस।" 1984 में ब्रॉकवुड के प्रश्नोत्तर सत्र के दौरान, उन्होंने शादी के बारे में यह टिप्पणी की थी : *अगर व्यक्ति के पास समय, धन और ऊर्जा है, तो वह यह सारा खिलवाड़ फिर से शुरू कर सकता है*।

मुझे ऐसा लगा था कि उनका संकेत मेरी ओर ही था और इस बात ने मुझे अजीब तरीके से छू लिया था, हालाँकि तब भी मैंने दूसरी मर्तबा शादी कर ली थी बावजूद इसके कि गेश्टाड में अपनी पहली मुलाकात के दौरान जब मैंने 'के' को बताया था कि मैं तलाकशुदा हूँ तो उन्होंने मुझे कहा था, "बढ़िया"। मैं जानता था कि वह मेरी मंगेतर को पसंद करते थे और मुझे उम्मीद थी कि वह इस निर्णय से सहमत होंगे परंतु उन्होंने बस अपने हाथों को ऊपर उठाया और कहा, 'शादी हो गयी, बस ऐसे ही!" उन्होंने मेरी नई पत्नी माग्दा को मैडम ए.जी. का नाम दिया। ब्रॉकवुड में उन्होंने मुझे परामर्श दिया था कि मैं अपना नाम बदलकर ए.जी. रख लूं। जब मैंने उनसे इसका अर्थ पूछा तो उन्होंने बताया कि ऑन्झ गार्दिऐं (रक्षक फरिश्ता)। 'के' ने यह भी कहा, *वह सर्वाधिक सुंदर स्त्री से विवाह करता है, और उसके लिए धरती पर नरक उतर आता है*।

मुझे याद है कि एक बार 'के' और मैं साथ–साथ भोजन कक्ष में जा रहे थे। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और उसी प्रगाढ़ता से कहा जो उनमें बहुधा नज़र आती थी, *मुझे नहीं मालूम कि मैं तुम्हें इतना अधिक पसंद क्यों करता हूँ। ऐसा मेरे साथ पहले कभी नहीं हुआ। इसका धन के साथ कुछ भी लेना देना नहीं है। पैसे की परवाह किसे है* ! एक अवसर पर उन्होंने मुझसे कहा, "हम भाई हैं।" कई सालों बाद मैंने सुनंदा पटवर्धन (पाद टिप्पणी 19 देखें) से, जो 'के' की एक पुरानी मित्र तथा भारतीय फाउंडेशन की ट्रस्टी थीं, पूछा था कि इस बात से उनका क्या मतलब रहा होगा। सुनंदा पटवर्धन ने जवाब दिया कि 'के' को लोगों से बस यूँ ही प्यार हो जाया करता था।

4 अगस्त 1928 को ओमन स्टार कैंप में 'के' ने अपने श्रोताओं को संबोधित करते हुए कहा था : *मुझे प्रेम है, आपसे नहीं, बल्कि उससे जो आपमें है, अदृश्य; आपके चेहरे और कपड़ों से नहीं अपितु उससे जो कि जीवन है*।

ज़ानेन, श्योनरीड और रूझमों

ज़ानेन में आयोजित 1984 की वार्ताओं के दौरान 'के' शले टानेग्ग में नहीं रह सकते थे क्योंकि उसे बेचा जा रहा था। इसलिए पास के श्योनरीड में उनके लिए एक फ्लैट किराए पर लिया गया। उन्होंने हमें वहाँ उनके शयनकक्ष में लगी समुद्री जहाज़ों की कई तस्वीरें दिखाईं; उनमें से एक में उन्होंने यात्रा भी की थी। उन्होंने टेलीविजन पर प्रसारित की जा रहीं दौड़ प्रतियोगिताएं भी देखीं जो उन गर्मियों में हुए ओलंपिक खेलों में शामिल थीं। उन्हें देख वह ज़ोर से बोल उठे : *मारिया, देखो ! देखो वे कैसे दौड़ रहे हैं !*

वह सोच रहे थे कि पिछले कुछ वर्षों से वे सब नाव की सैर करने श्पीएत्स क्यों नहीं गए हैं। उन्होंने मेरे जर्मन उच्चारण, श्पीत्स, को सही करते हुए कहा 'श्पी–एत्स', जैसा कि स्विस लोग बोलते हैं। फिर उन्होंने अपने ही प्रश्न का उत्तर दिया : *बहुत काम है करने के लिए*। और मैरी ज़िंबालिस्ट ने आगे कहा, ''हम अब बूढ़े होते जा रहे हैं।''

मेरे स्कूल के मित्र एडगार हैम्मर्ले को, जो आस्ट्रिया का रहने वाला है, और मुझे, दो बार 'के' के फ्लैट पर भोजन के लिए आमंत्रित किया गया। एडगार एक मिलनसार एकांतवासी की तरह एक लकड़ी की कोठरी में रह रहा था, बिजली, टेलीफोन व नल की सुविधा के बिना। उसने कई जंतु भी पाले हुए थे, जिनमें एक उल्लू भी शामिल था। जब 'के' एडगार से पहली बार मिले तब उन्होंने तुरंत उससे पूछा कि क्या वह एक तरह का किसान था। इसके बाद वे उत्साहपूर्वक पशुओं इत्यादि के विषय पर बातचीत करने लगे।

यह सभी जानते थे कि पशुओं के साथ 'के' का विशेष संबंध था। एक दिन हम भोजन के लिए गेश्टाड के निकट क्लोसटेर्ली रेस्तरां में गए, जहाँ वे अपनी ही जैविक फुलवारी में उगाए गए बहुत ही अच्छे व स्वादिष्ट सलाद पेश करते हैं। रेस्तरां के मालिक को कुत्तों से बेहद लगाव था। हम जब खाने की मेज़ पर बैठे थे, तब उनका कुत्ता वहाँ आया और 'के' की कुर्सी के नीचे जाकर लेट गया। रेस्तरां के मालिक यह देखकर आश्चर्यचकित हो गए और उन्होंने कहा कि उन्होंने कभी अपने कुत्ते को किसी अतिथि की कुर्सी के नीचे जाकर लेटते नहीं देखा था।

पशुओं के साथ अपने अनुभवों के विषय में बात करने में 'के' को बहुत आनंद आता था। किंतु सबसे अधिक वह एक बाघ का किस्सा सुनाना पसंद करते थे। भारत में एक

बार उनके कुछ मित्र उन्हें कार में बिठाकर एक वनस्थली में खुले घूमते बाघ दिखाने ले गए। देखते ही देखते एक बाघ वहाँ आ गया और कार की खिड़की की ओर बढ़ने लगा। 'के' उस पशु को पुचकारने के लिए बढ़े किंतु उनके भयभीत साथी ने झटके से उनका हाथ भीतर खींच लिया। 'के' को विश्वास था कि उन्हें कोई हानि नहीं पहुंची होती। उन्हें भय लगा ही नहीं।

एक और घटना, जो राजघाट में घटी थी, एक बंदर को लेकर थी। एक बार जब 'के' अपने कक्ष में योगाभ्यास कर रहे थे तब एक बड़ा जंगली बंदर खिड़की पर आ चढ़ा और अपना हाथ 'के' की ओर फैला दिया। 'के' ने उसका हाथ पकड़ लिया और वे कुछ देर उसी अवस्था में बैठे रहे—'के' और वह बंदर दोनों एक–दूसरे का हाथ थामे ('के' ने इस दृश्य का विवरण *द ओनली रेवल्यूशन* नामक पुस्तक में दिया है; इसका उल्लेख *पेंग्विन सेकंड कृष्णमूर्ति रीडर,* पृ. 42–43, में भी मिलता है)।

एक बार ओहाइ में भोजन करते समय 'के' ने अपनी सैर के दौरान हुई एक घटना सुनाई। घर लौटते समय उन्होंने एक कुत्ते के भौंकने की आवाज़ सुनी। उन्होंने कहा कि कुत्ते के भौंकने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह खतरनाक है या नहीं। यह कुत्ता बेशक खतरनाक था। चूंकि घर जाने का और कोई रास्ता नहीं था, उन्हें उस घर के सामने से ही गुज़रना पड़ा जहाँ वह कुत्ता भौंक रहा था। जैसे ही वह आगे बढ़े कुत्ता उनकी ओर भागता हुआ आया और उनके इर्द–गिर्द चक्कर लगाने लगा। अचानक उसने 'के' की बांह अपने दांतों के बीच दबोच ली जिस पर 'के' ने उसे झिड़कते हुए कहा : *तुम घर जाओ* ! और यही हुआ भी। कुत्ते ने उनकी बांह छोड़ दी और घर वापस लौट गया। फिर उन्होंने इस प्रकार के दुष्ट कुत्तों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए इसका बयान किया जैसा कि उन्हें फ्रांसीसी सेना के एक अफसर ने बताया था : एक डंडी को सीधी पकड़िए ताकि कुत्ता उसमें अपने दांत गाढ़ सके, और फिर उसके पेट पर लात मारिए। परंतु 'के' को इस प्रकार के बचाव की आवश्यकता महसूस नहीं हुई और उन्होंने हमें भी इसकी सलाह नहीं दी।

मेरे मित्र एडगार को वाइन पीने का बहुत शौक था। मेरे घर में वाइन न पाकर वह काफी निराश हुआ, और ज़ाहिर है जब हम श्योनरीड में भोजन करने गए वहाँ भी वाइन मिलने की उम्मीद उसने नहीं की। इसीलिए जब वहाँ उसने मेज़ पर एक उम्दा वाइन की बोतल देखी तो उसे आश्चर्य हुआ और प्रसन्नता भी। 'के' ने तुरंत उससे कहा : *तुम चाहो तो पूरी बोतल खाली कर सकते हो*। 'के' को तो वाइन लेनी नहीं थी।

1984 में रूझमों में भोजन से पहले मेरे एक मित्र की पुत्री के साथ बैठे 'के' © असित चंदमल

किंतु वे दोनों ही पूरे जोश और उत्साह के साथ बातचीत कर रहे थे। यह जानते हुए कि एडगार और मैं एक ही विद्यालय में पढ़े हैं 'के' ने उससे पूछा कि मैं विद्यालय मुख्यतः पढ़ाई करने गया था या स्कीइंग करने। एडगार ने अनुमान लगाया कि मैं वहाँ स्कीइंग करने गया था, और 'के' ने यूँ चेहरा बनाया मानो कह रहे हों 'मुझे मालूम था।'

बातचीत के दौरान 'के' ने एडगार को बताया कि भारत में कई लोग अंग्रेज़ी न जानते हुए भी उनकी वार्ताओं को सुनने आते थे, क्योंकि वे एक संत का सान्निध्य चाहते हैं। तब एडगार ने कहा कि 'के' तो कोई संत नहीं हैं, और 'के' ने उत्तर दिया : *हाँ, परंतु वे समझते हैं कि मैं हूँ।*

जब हमने दूसरी बार एक–साथ भोजन किया तब एडगार श्योनरीड से ट्रेन में घर लौटना चाहता था। हममें खूब बातचीत चल रही थी और मैंने कुछ आशंकित होकर

एडगार से पूछा कि उसकी ट्रेन कितने बजे छूटती है। पता चला कि स्टेशन पहुंचने के लिए हमारे पास केवल पांच मिनट का ही समय था। सभी लोग उठ खड़े हुए और मैंने एडगार से कहा, ''हमें वहाँ भाग कर पहुंचना पड़ेगा''। ''नहीं, नहीं'' मैरी ने कहा, ''मैं आपको अपनी गाड़ी में स्टेशन तक छोड़ दूंगी''। वह गाड़ी की चाबियां लेने ऊपर गईं। 'के' अपने हाथ ऊपर की ओर झटकते हुए चिल्लाए : *भागो ! भागो !* मैरी और भी तेज़ी से सीढ़ियों पर ऊपर भागीं जबकि एडगार और मैं तीव्रता से नीचे दौड़े, घर से बाहर निकले और स्टेशन की ओर भागे। जब हम बुरी तरह हांफते हुए वहाँ पहुंचे तब ट्रेन स्टेशन पर आ ही रही थी। अगली बार जब मैं 'के' से मिला तो उन्होंने कहा : *मैंने देखा था आप किस कदर भागे*।

'के' छोटी से छोटी बात पर भी अपना पूरा ध्यान देते थे। एक बार ओहाइ में जब मुझे 'के' के साथ भोजन के लिए जाना था तब कपड़े पहनते समय मुझे अपनी पतलून के साथ की बेल्ट नहीं मिल रही थी और मैं बिना उसके ही चला आया। उस दिन भोजन पर कई मेहमान आए थे, किंतु दो दिन बाद जब मैं 'के' से मिलने लौटा तो उन्होंने मुझसे सहजता से पूछा : *आपको अपनी बेल्ट मिल गई ?*

उनकी नज़रों से कुछ भी नहीं छिपता था। एक समय था जब मेरी छाती में दर्द रहने लगा था। दर्द बहुत अधिक होने के बावजूद मैं उस पर अधिक ध्यान नहीं दे रहा था और न ही मैंने डाक्टर से जांच करवाई। एक बार जब मैं 'के' के समीप से गुज़रा तो उन्होंने अपनी अंगुलियों से हल्के से मेरी छाती पर थपथपाया। उसके कुछ ही समय बाद छाती का वह दर्द जाता रहा। तब मेरी समझ में आया कि उन्होंने मेरी पीड़ा के निवारण के लिए ऐसा किया था। बाद में अन्य लोगों से भी मुझे ऐसी और कहानियां सुनने को मिलीं।

एक बार मुझे हाल ही में ओहाइ में खोले अपने खाते की बैंक स्टेटमेंट समझने में दिक्कत हो रही थी। मैंने मैरी से, जो यू. एस. ए. की रहने वाली हैं, उसे समझाने का निवेदन किया। जब वह मुझे समझा रहीं थीं तब 'के' वहाँ आए और हमारे चारों ओर घूमने लगे, और मैरी से बार–बार यह कहते रहे : *मारीया, अपना पूरा ध्यान दो !* वह इसे दोहराते रहे और अंत में मैरी ने जवाब दिया, ''परंतु मैं तो पूरा ध्यान दे रही हूँ''। कुछ देर बाद मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उस उबा देने वाली बैंक स्टेटमेंट से अधिक दिलचस्प और कुछ था ही नहीं।

'के' अक्सर पूरा ध्यान देने की बात करते थे, परंतु साथ ही इस पर भी ज़ोर देते थे कि इसे सम्मोहन नहीं समझ लेना चाहिए। कई बार वार्ताओं के अंत में लोग सम्मोहित से

प्रतीत होते थे। ऐसे अवसरों पर वह श्रोताओं से कहा करते : *देवियो और सज्जनो, यूं सम्मोहित हुए से बैठे न रहिए, कृपया उठिए* !

'के' सामान्यतः उत्कटता से बोलते थे किंतु बिना किसी भावविह्वलता के।

1985 की वार्ताओं के दौरान 'के' रूझमों में ठहरे थे। मैंने शले लो पैर्रेवू में अपना किराए का अपार्टमेंट उनके ठहरने के लिए उपलब्ध करवा दिया था, और फाउंडेशन ने उसी शले में एक अन्य बड़ा फ्लैट सहायकों और सहयोगियों के—जिनमें मिशाएल क्रोहनेन, रमन पटेल[14] और डा. परचुरे, और अन्य अपेक्षित अतिथि जैसे वांदा स्कारावैल्ली[15] शामिल थे—रहने के लिए किराए पर ले लिया था। इसके पिछले वर्ष हमने 'के' को वहाँ भोजन पर आमंत्रित किया था, और उन्होंने वहाँ रखी उम्दा लकड़ी की ठोस सतह वाली खाने की मेज़ की प्रशंसा की थी। उन्हें अक्सर वस्तुओं की गुणवत्ता की खासी जानकारी रहती थी और उसके लिए प्रशंसा का भाव भी।

कुछ दिनों बाद 'के' निचली मंज़िल के अपार्टमेंट से ऊपरी मंज़िल वाले घर में चले गए, क्योंकि वह ज़्यादा बड़ा था और उसमें एक छज्जा भी था। उन्हें इस बात की भी खुशी थी कि ऐसा करने से मैरी ज़िंबालिस्ट को उसी स्नानघर का प्रयोग नहीं करना पड़ेगा जिसे 'के' इस्तेमाल करते थे। उन्होंने शिष्टता के साथ कहा : *वह एक महिला हैं*। एक अन्य समय जब हम मैरी ज़िंबालिस्ट के साथ कार में बैठ रहे थे तब मैं 'के' की चढ़ने में मदद करने आगे बढ़ा, हालाँकि इसकी उन्हें कोई आवश्यकता नहीं थी। दूसरी ओर से मैरी आ रहीं थीं और उनकी तरफ इशारा करके 'के' ने कहा, *वह महिला हैं,* जिसे सुनते ही मैं तुरंत उनकी मदद के लिए बढ़ा।

उन्हीं दिनों 'के' ने पीतल के बने पाठ–दीप से अपनी उंगली जला ली थी। उस जले भाग को देखकर मैं घबरा गया था, किंतु 'के' ने यह कहते हुए बात को टाल दिया कि उन्हें पीड़ा सहन करने में कोई दिक्कत नहीं थी।

---

14. रमन पटेल 15 वर्षों तक ब्रॉकवुड पार्क के स्टाफ के एक सदस्य रहे। अब वह 'के' लिंक इंटरनेशनल के लिए कार्य करते हैं—उनके कई अन्य दायित्वों में से एक है दुनिया–भर में यात्रा कर, 'के' की शिक्षाओं में रुचि रखने वालों के बीच संबंध बनाए रखना।
15. वांदा स्कारावैल्ली 1937 में 'के' से मिलीं। 'के' की उनसे और उनके पति से घनिष्ठ मित्रता हो गई और वह अक्सर फ्लोरेंस के निकट उनके विशाल विला, 'इल लेच्चो' में ठहरते। ज़ानेन वार्ताओं के दौरान 'के' के ठहरने के लिए वह गेश्टाड में शले टान्नेग को किराए पर लिया करती थीं। 2001 में उनका देहांत हो गया।

"आईने की तरह साफ़" जिनेवा झील, बुशियाँ, स्विट्ज़रलैंड

एक दिन सुप्रसिद्ध अमरीकी अभिनेता रिचर्ड गिअर भोजन के लिए आए। हालाँकि 'के' सुबह ही एक वार्ता कर चुके थे, फिर भी उन्होंने रिचर्ड गिअर के साथ पूरी गहनता से एक घंटे से भी अधिक समय तक बातचीत की। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह एक और सभा को संबोधित कर रहे हों; और हम खाने की मेज़ से चार बजे उठे। जब जाने का समय समीप आया तो रिचर्ड गिअर ने, जो प्रत्यक्ष रूप से काफ़ी प्रभावित लग रहे थे, 'के' से पूछा कि क्या वह उन्हें गले मिल सकते हैं। एक इतने ऊँचे कद के व्यक्ति को यूँ झुक कर 'के' को गले लगाते देखना एक मर्मस्पर्शी दृश्य था; और 'के' की दुबली–पतली देह उनकी बांहों में मानो गुम हो गई थी।

रूझमों में ही मेरे बड़े पुत्र क्रिस्टोफ ने, जो अब विंटेज गाड़ियों का विक्रेता है, 'के' को अपनी पहली, बहुत ध्यान से मरम्मत की हुई और संभाल कर रखी हुई पुरानी एमजी–कार दिखाई थी। 'के' ने उसमें गहरी रुचि दिखाई और अपने उसी सावधानीपूर्वक ढंग से उस

गाड़ी के बॉनेट के नीचे झांका। मज़ाक में क्रिस्टोफ ने घोषणा की, "अब यह एक पवित्र गाड़ी है।"

मैं अपने छोटे बेटे जॉन को भी भोजन पर साथ लाना चाहता था। अंततः जब हम एक उचित दिन तय कर पाए तब मैंने प्रसन्नतापूर्वक 'के' को यह समाचार दिया, और उन्होंने कहा : *परंतु वह ऊब जाएगा*। मुझे तुरंत एहसास हुआ कि यह बात सही है और मैंने वह कार्यक्रम रद्द कर दिया; जॉन को भी इससे राहत महसूस हुई। वैसे जॉन और क्रिस्टोफ दोनों ओहाइ जा चुके थे और 'के' के साथ भोजन पर उनकी भेंट भी हो चुकी थी। ज़ानेन या ओहाइ में आयोजित वार्ताओं में भी उन दोनों ने भाग लिया था।

एक अन्य अवसर पर, ज़ानेन में एक बहुत ही प्रभावशाली वार्ता के पश्चात मैं 'के' से उनके फ्लैट में मिलने गया। वह अपने पलंग पर लेटे थे, उनके चिकित्सकों ने उन्हें हर वार्ता के बाद विश्राम करने की सलाह दी थी। मैंने उनसे कहा कि आज का उनका संबोधन अद्‌भुत रहा। वह बेहद संजीदा हो गए और उनसे एक महान ओजस्विता प्रवाहित होती महसूस हुई; उन्होंने सहजता से हामी भरी : *हां, अद्‌भुत था*।

इटली देश की एक महिला ने, जो एक बार भोजन के लिए आई थीं, बताया कि आरोग्यसाधकों और अतींद्रियदर्शियों के एक सम्मेलन में यह कहा गया था कि विचार के हस्तक्षेप के रहते आध्यात्मिक रोग–निवारण और अतींद्रियदृष्टि काम नहीं कर सकते। 'के' ने सहजतापूर्वक कहा : *सत्तर वर्षों से हम यही बात तो कहते आ रहे हैं*।

इसी दौरान पुपुल जयकर[16] ने रूझमों में 'के' से कहा था कि उन्हें समझ पाना अत्यंत कठिन था। उन्होंने मानो कुछ तय करते हुए उत्तर दिया : *मुझे और अधिक सरलता से बात करनी होगी*। और वास्तव में अगले दिनों में उन्होंने स्वयं को और अधिक सरलता व स्पष्टता से व्यक्त किया।

---

16. पुपुल जयकर (पुपुलजी) ने अपना पूरा जीवन सामाजिक कार्यों में बिताया, और भारतीय हस्तकला उद्योग से संबंधित कार्यों में उनकी मुख्य भूमिका रही। वह इंदिरा गांधी की, जो कि 1966 से 1984 तक भारत की प्रधानमंत्री थीं, करीबी सहयोगी और विश्वासपात्र थीं और सांस्कृतिक विषयों में उनकी सलाहकार भी। 'के' से उनकी भेंट 1948 में हुई और तत्पश्चात वह उनकी निकट सहयोगी रहीं, के.एफ.आई की ट्रस्टी और *'जे. कृष्णमूर्ति — अ बॉयोग्राफी'* की लेखिका के रूप में। 'के' के साथ हुई उनकी गहन वार्ताओं का उत्तम संकलन *'फायर इन द माइंड'* नामक पुस्तक में उपलब्ध है।

आर्नेनज़े के समीप एक तालाब, जो रश्टाड, स्विट्ज़रलैंड से ज़्यादा दूर नहीं है

एक मर्तबा 'के' ने कुछ महिलाओं की ऐसी कई कहानियां सुनाईं जो उनके आगे–पीछे घूमती रहती थीं। मद्रास में तो एक महिला ने खिड़की में से घुस कर 'के' के स्नानघर पर धावा बोल दिया था और उन्हें मदद के लिए पुकारना पड़ा था। एक अन्य महिला ने उनसे बहुत अनुरोध किया कि वह उन्हें उनके चरण स्पर्श करने दें। जब आखिरकार 'के' ने यह अनुरोध स्वीकार कर लिया तो उस महिला ने उनकी एड़ी को धर लिया और उसे छोड़ने का नाम ही ना ले। इन कहानियों के अंत में उन्होंने घोषणा की : *सनकी तो हम सभी हैं, परंतु इनका तो जवाब नहीं* ! मज़ाकिया लहजे में किस्से सुनाने का उनमें खास गुण था और वह तब तक हँसते रहते जब तक उनकी आँखों में पानी नहीं आ जाता। उनके संग–साथ कभी उदासी या ऊब महसूस नहीं होती थी।

'के' को फ्रेंच बोलने में बहुत आनंद आता था। एक बार भोजन के दौरान वह हमें पेरिस के बारे में बता रहे थे जहाँ उन्होंने अपना काफी समय बिताया था, खास तौर पर

1920 के दशक में। उन दिनों एक महाराजा से उनका परिचय था जो गाड़ियां इकट्ठा करने के शौकीन थे और गाड़ी के हर उस मॉडल को ख़रीद लेते थे जो उनके पास नहीं था। उनकी इन खरीददारियों पर 'के' उनके साथ जाते थे। 'के' ने उन कार–विक्रेताओं की कहानी सुनाई जो इस बात को मानने के लिए कतई तैयार नहीं थे कि 'के' महाराजा नहीं हैं। जब मैंने उनसे कहा कि पेरिस अब पहले जैसा नहीं रहा, तब 'के' ने उत्तर दिया: *आप तो जानते हैं...* जिसका अर्थ था कि उस शहर में अभी भी पहले सा कुछ बाकी था।

रूझमों में भ्रमण करते समय 'के' ने कुछ प्रशंसाभाव से इस बात पर टिप्पणी की कि किस प्रकार स्विस लोग अपने–अपने घरों में ईंधन की लकड़ी इकट्ठी किया करते हैं। वह अनुमान लगाने लगे कि अमरीकी लोग इस तरह के कार्य के विषय में क्या सोचते होंगे : *ओह, हमारे पास इस सब के लिए समय ही कहाँ है; जीवन बहुत छोटा है।*

एक बार जब मैं बुशियौं से लौटा तब 'के' ने मुझसे पूछा : *कैसा रहा ?* मैंने जवाब में बस कहा ही था ''वह झील...'' कि मेरे कुछ सोच पाने से पहले ही उन्होंने झट से वाक्य पूरा कर दिया *...आईने की तरह साफ थी।*

मैंने एक बार उनसे पूछा कि क्या वह जनसभाओं को संबोधित करने से पूर्व कोई तैयारी करते हैं। उन्होंने उत्तर दिया : *नहीं, क्योंकि ऐसा करने से मुझे समझ ही नहीं आएगा कि मैं क्या बोलूं।*

ज़ानेन वार्ताओं के इस अंतिम वर्ष में मैंने एक नवीन शले के निर्माण का कार्य आरंभ कर दिया था। 'के' यह जानने को बहुत उत्सुक थे कि वह शले कहाँ बनेगा और मैं उसे क्यों बनवा रहा हूँ। सो मैंने उन्हें उसके स्थान का विवरण दिया और बताया कि मैं हमेशा से ही एक लकड़ी का घर बनवाना चाहता था। अगले दिन की वार्ता में उन्होंने कहा : *अपना घर बनाना स्वकेंद्रित होना ही है।*

भारत की अंतिम यात्राएँ

नवम्बर 1985 में राजघाट में 'के' ने मुझसे कहा था कि उनके जीवन के कुछ महीने अभी भी बाकी हैं। जब मैंने उन्हें याद दिलाया कि उन्होंने हमसे वादा किया था कि वह दस वर्ष और जीएंगे, तो उन्होंने केवल अपने हाथ ऊपर किये, मानो यह कहने के लिए कि भला इस विषय में कोई क्या कर सकता है।

ब्रॉकवुड में 'के' का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। प्रातःकाल की उनकी नियमित सैर की अवधि भी अब छोटी होती जा रही थी। उपवन से गुज़रते हुए चरागाह को पार करना तो अब उन्होंने छोड़ दिया था क्योंकि एक जगह आकर वहाँ एक बाड़ को पार करना होता था। अन्यथा वह आज भी उतने ही फुर्तीले, उतने ही सक्रिय थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा : *मैं काम में पूरी तरह से जुटा हुआ हूँ* !

तटस्थता व समझ

मन का बेपरवाह होना, तटस्थ होना लाज़मी है—स्वास्थ्य के प्रति, अकेलेपन के प्रति, लोग क्या कहते हैं और क्या नहीं कहते इसके प्रति, इस बात के प्रति भी कि हम सफल होंगे या विफल, और इसी तरह किसी भी प्रभुत्व अथवा मान्यता के प्रति। आप यदि किसी को गोली चलाते सुनते हैं, बंदूक चलाकर खासा धमाका करते सुनते हैं, आप बड़ी आसानी से इसके अभ्यस्त हो सकते हैं और आप उसे सुनकर अनसुना कर देते हैं—वह तटस्थता नहीं है। तटस्थता तो तब आती है जब आप उस शोर को बिना प्रतिरोध के सुनते हैं, उस शोर के साथ रहते हैं, उसके साथ अनंत दूरी की यात्रा पर निकल जाते हैं—तब वह शोर आपको प्रभावित नहीं करता, आपका ध्यान भंग नहीं करता, आपमें उपेक्षा का भाव नहीं लाता। तब आप दुनिया की हर आवाज़ को सुन पाते हैं—अपने बच्चों की आवाज़, अपनी

पत्नी की आवाज़, चिड़ियों की आवाज़, राजनेताओं की चकचक का शोर—आप यह सब तटस्थ होकर पूरी तरह सुनते हैं, अतएव समझ–बूझ के साथ सुन पाते हैं।

'ऑन लिविंग एंड डाइंग', पृ. 99 से उद्धृत
© 1992 कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड
एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका

इस उत्साह और स्नेहभरी तटस्थता का अनुभव कर पाने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ जब हम ब्रॉकवुड के वेस्टविंग की ओर एक गाड़ी में बैठे थे और हवाईअड्डे जाने का इंतज़ार कर रहे थे। हमें एक सहयात्री के लिए काफी इंतज़ार करना पड़ रहा था। कोई सोचता होगा कि 'के' इतनी लंबी यात्रा के ख्याल से परेशान होंगे। किंतु वह एकदम शांत बैठे इंतज़ार कर रहे थे, बल्कि इतनी लंबी प्रतीक्षा के बावजूद प्रसन्न नज़र आ रहे थे।

'के' काफी उत्साहित थे जब 1984 में उन्होंने मुझसे कहा था : *आप मेरे साथ भारत चलिए* ! कोई भला कैसे इनकार कर सकता था? उन्होंने मुझे अपने निवासस्थान के करीब आकर रहने को और उनके साथ ही खाना खाने को कहा। *आप हमारे साथ रहिए* ! उन्होंने कहा जब मैं पहली बार ऋषि वैली, राजघाट और मद्रास गया। उसी यात्रा के दौरान मैं अकेले बंगलौर में स्थित वैली स्कूल और उत्तरकाशी के करीब भागीरथी वैली भी गया, [जहाँ बाद में कई वर्षों तक नचिकेत सेंटर और नचिकेत स्कूल रहा]

1984 में मद्रास में एक दिन मैं उनके कमरे में गया और वह हाल ही में प्रकाशित हुई एक किताब को देख रहे थे जिसके ऊपरी पन्ने पर उन्हीं की तस्वीर छपी थी। कुछ विनोदभाव से उन्होंने उस पन्ने की ओर इशारा किया और कहा : *यह व्यक्ति कुछ उदास दिखता है*।

वर्ष 1985 के समाप्त होते–होते मैं 'के' के साथ भारत की उनकी अंतिम यात्रा पर जा रहा था (उसके बाद मैं कई बार स्वयं भारत गया, और के.एफ.आई. का ट्रस्टी बना। 'के' ने मुझे के.एफ.टी. का ट्रस्टी बनाया था, और मैं के.एफ.ए. का भी मानसेवी ट्रस्टी बन गया)।

हमें प्रातः जल्दी प्रस्थान करना था। सूर्योदय अभी हुआ नहीं था, फिर भी स्टाफ के सभी लोग व विद्यार्थी वेस्ट–विंग में पहुँच गए थे और सीढ़ियों के नीचे हमें विदा करने के लिए इंतज़ार कर रहे थे। हम लगभग सौ लोगों की कतार के सामने से गुज़रे और दरवाज़े की तरफ बढ़ते हुए 'के' ने उनसे हाथ मिलाया। वातावरण गंभीर था और इस पूर्वाभास से बोझिल था कि ब्रॉकवुड की यह 'के' की अंतिम यात्रा थी।

डौरोथी सिमौन्स, स्कूल की पूर्व प्रधानाचार्या, हमें अपनी गाड़ी में हवाईअड्डे तक छोड़ने आईं। 'के' और मैं पिछली सीट पर बैठे। जब हम वहाँ से निकले तो बारिश हो रही थी, जो जल्द ही बंद भी हो गई, किंतु डौरोथी विंडस्क्रीन के वाइपर बंद करना भूल गईं। वे विंडस्क्रीन की सूखी सतह पर आवाज़ करने लगे। मुझे कुछ बेचैनी सी होने लगी और मैं उनसे कुछ कहना भी चाह रहा था, किंतु फिर 'के' की प्रतिक्रिया देखने के लिए रुक गया। और जैसा कि कई बार हुआ है, उनकी प्रतिक्रिया चकित करने वाली थी। उन्होंने केवल इतना कहा : *बारिश थम गई है,* जिसे सुनते ही डौरोथी ने तुरंत वाइपर बंद कर दिए।

हवाईअड्डे पर अलविदा कहते समय महिला–मित्रों की आँखें भर आईं। डौरोथी और मैरी ज़िंबालिस्ट पीछे रुकने वाली थीं। केवल मैं 'के' के साथ यात्रा करने वाला था। रीटा ज़ांपेज़े[17], जो कि लंदन में स्थित लुफ्थांसा के युनाइटेड किंगडम क्षेत्र के जनसंपर्क विभाग की मैनेजर थीं, हमें लाउंज से होकर हवाईजहाज़ तक ले गईं। सामान के तौर पर तब मेरे पास केवल एक रकसैक था, जो मैं अपने साथ हवाईजहाज़ में ले गया। आज इतने कम सामान के साथ ऐसी यात्रा करने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।

हम महिलाओं और पुरुषों के एक समूह के पास बैठे थे जो शायद सभी कारोबारी लोग थे, और अपने में मग्न थे। वे धूम्रपान करते हुए बातें कर रहे थे, शराब पी रहे थे। 'के' ने उनकी ओर अचरज भरी आंखों से देखा, उनके चेहरे पर अचंभे का भाव था परंतु तिरस्कार या घृणा की कोई झलक नहीं थी।

हमें फ्रैंकफर्ट में हवाईजहाज़ बदलना था, और मुझे याद है कि किस आनंद से 'के' ने टर्मिनल तक ले जाने वाली तेज़ विद्युत शटल में सफर किया। वापस हवाईजहाज़ में उन्हें

---

17. रीटा ज़ांपेज़े एक लंबे अरसे से ब्रॉकवुड पार्क से जुड़ी रही हैं। उन्होंने ही ऋषि वैली में 'के' और मेरी तस्वीरें खींची थी, जो पृ. 47 और आखिरी पन्ने पर दी गई हैं। वह अभी भी हर वर्ष भारत आती हैं।

दिसंबर 1984 में ऋषि वैली, भारत में 'के' और मैं © रीटा ज़ांपेज़े

आगे दायीं ओर एक अकेली सीट दी गई थी, जो सुविधा केवल लुफ्थांसा में ही उपलब्ध थी। इसके विपरीत मुझे एक सज्जन के निकट जगह मिली जो समाचारपत्र पढ़ रहे थे और साथ–साथ संगीत भी सुन रहे थे। सिर्फ यही नहीं, वह अपना हाथ इस तरह हिला रहे थे जैसे कोई संगीत–संचालक ताल देता है। वह भी अपने आप में मग्न थे और अपने पड़ोसियों में—'के' और मुझमें—उन्हें ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थीं। रूस और अफगानिस्तान के ऊपर उड़ते समय रात हो चुकी थी। हवाईजहाज़ में 'के' ने मुझसे कहा : *मुझे खुशी है कि हम दोनों अकेले हैं*।

दिल्ली पहुंचकर 'के' पुपुल जयकर के साथ उनके अपार्टमेंट में रहने चले गए; मैं एक होटल में ठहरा। हम हर रोज़ संध्याकाल लोधी पार्क में मिलते। मिलने का समय हमेशा शाम का ही होता था, क्योंकि 'के' को एक बार लू लग गई थी और इस कारण सूर्य की

तेज़ किरणों से उन्हें दूर रहना पड़ता था। पार्क में जाने के लिए एक तरह के चक्रद्वार से होकर जाना होता था जिस पर वहाँ से गुज़रने वालों के हाथों के पसीने, मैल की परत नज़र आती थी। मैं उस द्वार को अपने पैर से खोलता, और ऐसा करने पर 'के' हर बार कहते : *सही किया* ! वह साफ–सफाई की ओर बहुत ध्यान देते थे।

उस पार्क की अच्छी देखभाल की जाती थी, वहाँ कई पेड़, बाग़, छोटी नहरें और पुल, और मुग़लकाल से पूर्व की पुरानी इमारतें थीं। संध्या होते ही अनगिनत पक्षी वहाँ एकत्र हो जाते और अपना रात का बसेरा बना लेते। उनके कोलाहल में कुछ और सुनाई नहीं देता था। कभी–कभार नंदिनी मेहता[18] अथवा राधिका हेर्त्सबेर्गर[19] की सुपुत्री माया, और कभी पामा पटवर्धन[20] भी हमारे साथ सैर पर आ जाया करते।

सफर और उसके साथ होने वाला मौसम का बदलाव 'के' को बेहद थका देता था और दिल्ली में उनकी तबीयत और खराब होती गई। वह ठीक से सो नहीं पाते थे और बहुत कम भोजन लेते।

कई बार पार्क में टहलने आने वाले लोग उन्हें पहचान लेते। एक व्यक्ति कुछ आक्रामक ढंग से उनकी तरफ बढ़ा और उनसे पूछने लगा, "क्या आप कृष्णमूर्ति हैं?

---

18. नंदिनी मेहता पुपुल जयकर की बहन थीं। 'के' से उनकी भेंट 1947 में हुई थी और वे अच्छे मित्र बन गए। इन्हीं को 'के' पत्र लिखा करते थे, जो कि पुपुल जयकर द्वारा लिखित 'के' की जीवनकथा के अध्याय 'हैपी इज़ द मैन हू इज़ नथिंग' में उद्धृत हैं, जिन्हें हाल ही में के.एफ.टी ने लैटर्ज़ टू ए यंग फ्रेंड के रूप में पुनर्प्रकाशित किया है। नंदिनी मेहता ने मुंबई में साधनहीन बच्चों के लिए बाल आनंद विद्यालय की स्थापना की और वह के.एफ.आई. की ट्रस्टी भी थीं। वर्ष 2002 में उनका निधन हो गया।
19. पुपुल जयकर की सुपुत्री राधिका हेर्त्सबेर्गर 'के' से बचपन से ही परिचित थीं। वह ऋषि वैली स्कूल की निदेशिका हैं और के.एफ.आई. की ट्रस्टी भी।
20. पामा पटवर्धन (पामाजी), उनकी धर्मपत्नी सुनंदा ('ए विझन ऑफ द सेक्रेड—माइ पर्सनल जर्नी विद कृष्णमूर्ति' की लेखिका) एवं उनके भाई अच्युत (जो भारत के एक प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी रहे) 1947 में 'के' के निकट संपर्क में आए। वे तीनों ही के.एफ.आई. के ट्रस्टी थे। अच्युत आजीवन अविवाहित रहे, और एक बार मैंने उनसे पूछा कि वह कैसे 'बच निकले'। उन्होंने जवाब दिया कि वह बच नहीं निकले, बल्कि उनके हृदय की इच्छा उस तरह पूरी नहीं हुई जैसा वह चाहते थे, और उसके बाद उन्हें वैसा एहसास फिर कभी नहीं हुआ।*

आपको तो भारत में रहना चाहिए! आपकी जड़ें तो यहाँ हैं! 'के' ने उत्तर दिया : *मैं कोई नहीं हूँ* ! फिर उन्होंने अपने खुले हाथ ऊपर की ओर उठा कर मुझसे कहा: *देखा आपने! इन्होंने एक निश्चित धारणा बना ली है और उसी से चिपके हुए हैं*। ऐसी घटनाओं के बावजूद 'के' हरएक से मैत्रीभाव से मिलते, खासतौर पर उन साधनहीन लोगों से जिनकी ओर साधारणतः कोई ध्यान नहीं देता था, जैसे कि लोधी पार्क के प्रवेशद्वार पर खड़ा आइसक्रीम बेचने वाला।

वाराणसी जाते हुए हवाईजहाज़ में 'के' ने तेज़ धूप के कारण खिड़की के परदे बंद रखे। एक बार उन्हें लू लग गयी थी इसलिए खड़ी धूप से खुद को बचाना उनके लिए ज़रूरी था। परंतु वह समय समय पर परदे को उठाते ताकि हिमालय की धवल चोटियों का नज़ारा देख सकें। हम दोनों इस बात पर एकमत थे कि पर्वत वास्तव में कमाल की चीज़ हैं!

उन्होंने मुझे बताया कि जब वह नौजवान थे तब एक बार जर्मनी में त्सूगश्पित्से की चढ़ाई कर रहे थे, अपने साधारण जूतों में ही। एक पर्वतारोहण गाइड ने, जो कि रस्सियों के सहारे चढ़ते हुए अपने ऑल्पनिस्ट साथियों के साथ वहाँ से गुज़र रहा था, 'के' को देखा। उन्हें थोड़ा डांटने के बाद उस गाइड ने उन्हें रस्सी के सिरे से बांधा और पहाड़ के नीचे पहुंचाया। किंतु 'के' को तनिक भी भय नहीं लग रहा था, और उनका कहना था कि वह स्वयं भी सुरक्षित नीचे पहुंच सकते थे।

वाराणसी में राजघाट के वातावरण ने मुझे अभिभूत कर दिया। यहाँ पर उसी मौन सौम्यता का एहसास होता है जो हर उस स्थान पर विद्यमान प्रतीत होती है जहाँ 'के' रहे—ब्रॉकवुड, ऋषि वैली, वसंत विहार (मद्रास में उनका घर और इंडियन फाउंडेशन का मुख्यालय), ओहाइ, हर जगह यह महसूस होता है। यही अनुभूति गेश्टाड में शले टान्नेग में, पुपुलजी के दिल्ली वाले किराये के अपार्टमेंट में और मुंबई के उनके घर में भी होती है। ये सभी जगहें प्राकृतिक सुंदरता से घिरी हैं और इनकी देखरेख में कहीं कोई कमी दिखाई नहीं देती—जैसे ये कष्ट और विक्षोभ से भरे संसार में प्रशांति के द्वीप हों, पेड़–पौधों, पक्षियों और तितलियों से भरे; एक पवित्रता सी है इन जगहों में, एक पावनता।

राजघाट स्कूल के आस–पास के मैदानों में भ्रमण करते हुए आपको कई पुरातात्त्विक उत्खनन स्थल देखने को मिलते हैं। स्कूल की इमारतें वाराणसी के सबसे प्राचीन स्थान काशी में स्थित हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यहाँ के मंदिर, बाग़ीचे, और शाही महल 4000 से 5000 वर्ष तक पुराने हैं। पुरातात्त्विक उत्खनन स्थलों के परे एक नहर

शहर भर की गंदगी व मलमूत्र को गंगा तक बहा ले जाती है। 'के' के आवास की ओर जाते हुए सारे रास्ते उस नहर की दुर्गंध आती है। जब पुपुलजी ने 'के' को आश्वासन दिया कि जल्द ही एक नवीन मल निकास व्यवस्था का निर्माण किया जाएगा तो वह हँस पड़े। यह आश्वासन शायद पहले भी कई बार दिया जा चुका था, और जब मैं अगले वर्ष फिर वहाँ गया तब तक भी इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया गया था। 1988 के अंत में जब मैं वहाँ गया तब मैंने देखा कि एक विशाल नहर–योजना का कार्यान्वयन शुरू हो गया था।

राजघाट में मेरा कमरा 'के' के कमरे के नीचे था। राजघाट पहुंचते ही उन्होंने राधिका और कुछ अन्य सहकारियों के साथ गहन संवाद आरंभ कर दिए। सूर्यास्त होने पर वह अपने सहयोगियों के साथ, जिन्हें वह मज़ाक में अपना अंगरक्षक कहते थे, स्कूल के बड़े खेल के मैदान में कई चक्कर लगाते। मनबहलावे की इन सैरों पर भी वह उनके साथ चर्चाएं जारी रखते। परंतु, जैसा कि वह स्वयं ही कहते थे, उनकी टांगें अब बहुत कमज़ोर होती जा रही थीं। एक बार सैर के बाद वह सीढ़ियों पर आगे की ओर गिर पड़े। उनके साथी उठने में उनकी मदद करने के लिए आगे बढ़े किंतु उन्होंने यह कहकर इनकार कर दिया : *यदि मैं सीढ़ियों पर गिरता हूँ तो इसे मेरा मसला रहने दीजिए* !

जब 'के' के लिए तेज़ गति से चलना कठिन हो गया, तब मैं अकेले ही जाता, और जितना हो सकता उतनी फुर्ती से मैदान के चक्कर लगाता। ऐसी सैरों के बाद वह मुझसे पूछते कि मैंने कितने चक्कर लगाए और उन्हें लगाने में कितना समय लिया। जब मैं कहता कि मैंने अपना ही रिकार्ड तोड़ दिया है तो वह बहुत उत्साहित होते। लेकिन किसी ने शायद उनसे खेल के मैदान में इधर–उधर दौड़ते रहने वाले इस अजीब बंदे की शिकायत की होगी, क्योंकि एक बार मित्रों के साथ एक गोष्ठी में उन्होंने कहा : *वह केवल अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हैं; इसमें बुराई क्या है* ?

लोगों को भोजन के लिए आमंत्रित करने का रिवाज़ था और 'के' उनके साथ गहनता से वार्तालाप किया करते थे। ओहाइ और ज़ानेन में कभी–कभी वह दोपहर के चार बजे तक बातचीत करते रहते, चाहे उन्होंने उसी सुबह एक जनसभा को संबोधित ही क्यों न किया हो। उन्हें आमंत्रित लोगों से उनकी विशेषज्ञता और कार्यक्षेत्र के बारे में पूछना अच्छा लगता था। इस कारण उन्हें कई क्षेत्रों में हो रही प्रगति के विषय में खासी जानकारी थी, जैसे राजनीति, शिक्षा, विज्ञान, चिकित्सा और कंप्यूटर। एक बार एक विश्वविद्यालय के उपकुलपति और उनकी पत्नी को राजघाट में भोजन के लिए आमंत्रित किया गया था।

राजघाट, भारत, में गंगा पर होते सूर्योदय का दृश्य

अड्यार समुद्रतट पर मछुआरे; मद्रास (चैन्नई), भारत के इसी समुद्रतट पर 'के' की 'खोज' हुई थी।

'के' को यह देख कर दुःख हुआ कि उस व्यक्ति के चेहरे पर एक बार भी मुस्कान नहीं आई और न ही उसने एक बार भी अपनी पत्नी की ओर देखा।

बीच–बीच में विक्रम परचुरे[21] की पत्नी अंबिका अपने साथ अपनी तीन साल की प्यारी सी बिटिया को ले आती थी, 'के' उस नन्ही बच्ची से कहा करते थे : *भूलना नहीं, मैं तुम्हारा सबसे पहला ब्वायफ्रैंड बनना चाहूंगा*।

राजघाट में हमारे प्रवास के दौरान वहाँ कई धार्मिक उत्सव मनाए जा रहे थे, जो अकसर बहुत शोरगुल वाले होते थे। पास के मंदिर से पटाखों, ढोलकों और देर रात तक भजन–गायन की गूंज सुनाई देती थी। अगली सुबह जल्दी वही सब फिर शुरू हो जाता। पास ही एक मस्जिद भी थी जहाँ से लाउडस्पीकर पर मुअज़्ज़िन की अज़ान हमें सैर करते समय सुनाई देती थी। 'के' इन सबसे विचलित होते प्रतीत नहीं होते थे। जब कभी मुअज़्ज़िन ने अज़ान शुरू नहीं की होती थी और यदि वह 'के' को आते देख लेते थे तब वह चारदीवारी तक चल कर आते और 'के' से स्नेहभाव से हाथ मिलाते।

इन्हीं दिनों *द सीअर हू वॉक्स अलोन* नामक भारतीय फिल्म—कृष्णमूर्ति पर एक वृत्तचित्र—का कुछ हिस्सा राजघाट में फिल्माया जा रहा था। उसमें 'के' को नदी पर बने तंग पुल पर चल कर जाना था और फिर उस पगडंडी पर चलना था जिस पर बुद्ध संबोधि प्राप्ति के पश्चात चल कर सारनाथ गए थे। 'के' ने फिल्म के निर्देशक से कहा : *आप जो चाहते हैं मैं करने के लिए तैयार हूँ*। एक दृश्य में पार्श्व में ढलते सूरज के सम्मुख वरुणा नदी के ऊपर एक पहाड़ी पर खड़े 'के' की परिरेखा ऐसे दिखाई गई है जैसे कि वहाँ कोई प्राचीन प्रतिमा खड़ी हो।

सार्वजनिक वार्ताओं का समय नज़दीक आने पर 'के' में एक नयी स्फूर्ति, एक नया जोश भरता हुआ सा प्रतीत होने लगा। शारीरिक कमज़ोरी के स्पष्ट लक्षणों के बावजूद

---

21. विक्रम परचुरे, डॉ. परचुरे के सुपुत्रों में से एक, ऋषि वैली स्कूल में अध्यापक थे और वहां की ग्रामीण महिलाओं की उन्नति से जुड़े कार्यक्रमों में सहायक थे। उन्होंने के.एफ.आई. को उनके प्रकाशन संबंधी कार्यों में सहयोग दिया, और अब वह थाइलैंड में स्थित क्वेस्ट फाउंडेशन के साथ 'के' की शिक्षाओं के प्रचार की दिशा में प्रयास कर रहे हैं।

सूर्यास्त के समय ऋषि वैली के रिसन जलाशय का दृश्य, ऋषि कोंडा, भारत, की ओर मुखातिब

उन्होंने राजघाट में तीन वार्ताएं दी और एक प्रश्नोत्तर सत्र का आयोजन किया। उन्होंने पंडितजी[22] के साथ भी तीन संवाद–संगोष्ठियों का आयोजन किया। ये संवाद उनके आवास की तीसरी मंज़िल पर तीस से चालीस लोगों की मौजूदगी में आयोजित किए गए थे; इनका अभिलेखन *द फ्यूचर इज़ नाउ* नामक पुस्तक में किया गया है।

इन वार्तालापों के दौरान एक व्यक्ति ऐसे थे जो 'के' से पूर्णतः स्पष्ट और सरल बात करने के अपने ढंग के कारण औरों से अलग नज़र आ रहे थे। उस समय मुझे यह मालूम नहीं था कि वह स्कूल के नये निदेशक पी. कृष्णा[23] हैं। स्वास्थ्य बहुत बुरा होने के बावजूद

22. पंडितजी, यानी पंडित जगन्नाथ उपाध्याय (पंडित, संस्कृत का एक शब्द है जिसका अर्थ है 'विद्वान व्यक्ति'; यह उपाधि उस व्यक्ति को दी जाती है जिसे संस्कृत, हिंदू विधान, धर्म और दर्शनशास्त्र, और यदा–कदा अन्य विषयों में महारत हासिल होती है)। पंडितजी बौद्ध और हिंदू धर्म के प्रतिष्ठित विद्वान थे जिन्होंने 'के' के साथ कई संवादों में भाग लिया। 'के' के निधन के कुछ समय पश्चात ही पंडितजी का भी निधन हो गया।
23. पी. कृष्णा, राधा बर्निअर के चचेरे भाई, 1958 में 'के' से मिले। वह बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर थे जब 'के' ने उन्हें राजघाट शिक्षा केंद्र का प्रमुख बनाया। 2002 में वह सेवानिवृत्त हो गए किंतु वह अभी भी के.एफ.आई. के ट्रस्टी हैं।

भी 'के' इस पद से संबंधित हर पहलू पर ध्यान देना चाहते थे और वह इस विषय को अपना पूरा समय व शक्ति दे रहे थे। उन्होंने कृष्णा को सपरिवार भोजन पर आमंत्रित किया और उनकी धर्मपत्नी और बच्चों से स्नेहभाव से बातचीत की; एक बार उनके दादाजी भी साथ आए। हमेशा की तरह 'के' को व्यावहारिक बारीकियों में भी दिलचस्पी थी, जैसे कि नये निदेशक की उचित तनख्वाह क्या होनी चाहिए और यह कि उन्हें एक गाड़ी की भी ज़रूरत पड़ेगी, वगैरह। वह कृष्णा को लेकर काफी उत्साहित थे जिन्होंने एक प्रसिद्ध भौतिकीविद के नाते अमेरिका और यूरोप में काम किया हुआ था। उन्होंने मुझे बताया कि जब उन्होंने कृष्णा से स्कूल की बागडोर संभालने की बात कही तो पहले कृष्णा ने कुछ सोच–विचार किया और फिर कहा, ''मुझे बेहद खुशी होगी''। यह बहुत सौभाग्य की बात थी क्योंकि उस समय स्कूल में काफी दिक्कतें आ रही थीं।

आखिरकार यह तय किया गया कि 'के' अपने पलंग पर ही भोजन किया करेंगे क्योंकि भोजन के समय होने वाली इन चर्चाओं के दौरान उन्हें खाने का अवसर ही नहीं मिलता था। वास्तव में उनकी भूख भी अब कम हो गई थी।

अपनी एक सैर के दौरान 'के' ने आर. आर. उपासनी[24] से, जो राजघाट के एग्रीकल्चरल कॉलेज के प्रधानाचार्य के पद से निवृत्त होने की सोच रहे थे, पूछा कि क्या वह वहीं रुक कर फाउंडेशन के लिए कार्य करना चाहेंगे। उपासनी ने उस समय तक वहाँ रहने के लिए हामी भरी जब तक 'के' वहाँ हैं। मैंने 'के' से कहा : ''उपासनी को आपके यहाँ से जाने के बाद भी रुकना चाहिए''। 'के' ने तुरंत उपासनी से निवेदन किया : *महाशय, आप एक या दो वर्ष और यहाँ रुक जाइए।* उपासनी यह सुन कर इतने प्रभावित हुए कि उनकी आँखें छलक आईं (1987 में 'के' की मृत्यु के पश्चात उन्होंने इंडियन फाउंडेशन के सचिव का पद संभाला)। अंधेरा हो रहा था और अचानक 'के' ने पूछा : *कहाँ हैं वह?* अब वह उपासनी को देख नहीं पा रहे थे। रात के अंधेरे में देख पाने की उनकी क्षमता अब जा रही थी।

---

24. आर. आर. उपासनी ने 'के' के लिए तीस वर्षों से अधिक कार्य किया। वह के.एफ.आई. के सचिव के पद पर भी रहे। वह अब हमारे बीच नहीं रहे। वह सहयाद्री प्रबंधक समिति के सचिव भी रहे (सहयाद्री स्कूल की स्थापना 'के' के देहांत के पश्चात की गई)।*

अपने राजघाट प्रवास के दौरान 'के' ने सेक्स के विषय पर कई बार चर्चा की। उन्होंने इस ओर ध्यान दिलाया कि यदि सेक्स न होता तो हम भी न होते, यह जीवन का ही एक अभिन्न अंग है। किसी ने 'के' को एक ऐसे विवाह के बारे में बताया जिसमें वर वधू अलग–अलग धर्मों को मानने वाले समुदायों से जुड़े थे, सभी मेहमान आ चुके थे और मालूम हुआ कि वर बिना कोई स्पष्टीकरण दिए वहाँ से नदारद था। 'के' अकसर इस घटना के विषय में बात करते थे, और उन्हें उस लड़की के निश्चय पर अचरज था जो यह जानते हुए भी कि ऐसी परिस्थितियों में उसे कितनी कठिनाइयां उठानी पड़ेंगी विवाह करने को तैयार थी। एक बार उन्होंने यह विचार व्यक्त भी किया : *क्या उन्होंने सेक्स किया होगा* ? इस प्रश्न की सरलता और निर्दोषता से उपस्थित लोगों की हँसी फूट पड़ी।

एक बार जब 'के' कई थियोसोफिस्टों के साथ ऐनी बेसेंट के कमरे में बैठे थे तो उन्होंने उनसे पूछा : आज किस विषय पर बातचीत की जाए? और फिर आगे बोले : *अरे हाँ, चलिए मैं आपको कुछ चुटकुले सुनाता हूँ* ! ऐनी बेसेंट की कॉफी सर्विस अभी भी उस कमरे में ही थी, किंतु 'के' को न तो उसका और न ही उस कमरे का कोई स्मरण था। वह कॉफी सर्विस साठ साल से भी अधिक समय से वहाँ मौजूद रही होगी।

उन वार्ताओं के पश्चात हम हवाईजहाज़ से दिल्ली होते हुए मद्रास गए। पहुंचने पर वहाँ का मौसम सुहावना गर्म था। ताड़ के पेड़ और फूलों से भरी झाड़ियां ताज़ी हवा के झोंकों के साथ हल्के–हल्के झूम रहे थे। हवाईअड्डे से वसंत विहार जाते समय अचानक यह महसूस हुआ जैसे मैं घर लौट रहा हूँ। उसी क्षण कृष्णमूर्ति ने कहा : *ऐसा लग रहा है मानो घर आ गए हों* !

बाद में, समुद्र के किनारे चलते हुए हमने लहरों को चमकदार सुनहरी रेत पर गड़गड़ा कर टूटते हुए सुना और देखा। बहुत तेज़ हवा चल रही थी, फिर भी आकाश में महीन बैंगनी रंग के बादल बिखरे थे। इस पृष्ठभूमि पर जहाँ एक ओर पूर्णिमा का चाँद उदय हो रहा था वहीं विपरीत दिशा में भव्य सूर्य अस्त हो रहा था। और इस दृश्य की छवि अड्यार नदी की सतह पर प्रतिबिंबित हो रही थी।

हम मद्रास में केवल कुछ ही दिन रुके। ऋषि वैली के लिए हम सुबह जल्दी रवाना हो गए, और इस बार हमने सूर्य को उदय होते और उसी समय पश्चिम में चंद्रमा को अस्त होते देखा। हम एक नयी गाड़ी में यात्रा कर रहे थे, जो उस पुरानी अमरीकी गाड़ी से कहीं अधिक आरामदेह थी जिसमें हमने पहले सफर किया था। हमेशा की तरह गाड़ी

का प्रबंध एक अच्छे मित्र आर. एस. संथानम[25] ने किया था। हम तब तक बढ़ते रहे जब तक कि आधा रास्ता पार नहीं हो गया और सामने पहाड़ियां दिखनी शुरू नहीं हो गईं। सुबह का वह प्राकृतिक दृश्य अत्यंत शांतिपूर्ण था। मोटरसाइकल पर जाता एक व्यक्ति जो सड़क के किनारे रुका हुआ था 'के' को वहाँ देखकर चकित रह गया। 'के' भी इस बात से कम हैरान नहीं थे कि इस अलग–थलग जगह पर उन्हें किसी ने पहचान लिया।

'के' हमारे खुशमिजाज़ गाड़ीचालक के साथ बातचीत करते रहे और उन्हें ज़ोर देकर कहा कि वह अपने बच्चों को ऋषि वैली स्कूल भेजें। बाद में उनके पुत्र ने वास्तव में ऋषि वैली स्कूल में पढ़ाई की।

ऋषि वैली में राधिका और 'के' एक ही मंज़िल पर रहते थे। कभी–कभी जब 'के' थोड़ा स्वस्थ महसूस करते थे तो मैं उन्हें सुबह मिलने उनके शयनकक्ष में चला जाता। चूंकि वह इतना कमज़ोर महसूस करने लगे थे, वह रोज़ाना सैर पर नहीं जा पाते थे। फिर भी वह विद्यार्थियों और अध्यापकों से कई बार मिले और उनसे बातचीत की।

ऋषि वैली में हमारी अंतिम सैर (दिसंबर 1985 में, पुस्तक के पिछले कवर पृष्ठ पर छपी तस्वीर जो 1984 में ली गई थी उसका स्मरण कराती है) के दौरान कुछ हुआ था। जब मैं विस्मय भाव से ऋषि वैली के मनोहर नीले पर्वतों को निहार रहा था तब 'के' ने अचानक मेरे कंधे पर हाथ रखा और कुछ ऐसा कहा : *मेरे प्यारे दोस्त*। राधिका तब हमारे साथ थीं और जब उन्होंने मुझे उस घटना की याद दिलाई तो मैंने उनसे उसे लिख लेने को कहा, जो कि उन्होंने किया :

"जैसे जैसे हमारी टोली सड़क पर आगे बढ़ रही थी, मुझे महसूस हो रहा था कि वह अपने नौजवान दोस्तों के समूह, जो उस शाम हमारे साथ सैर करने आया था, के साथ कदम मिला कर चल पाने के लिए अपना पूरा ज़ोर लगा रहे थे। किंतु जैसे ही हम पत्थरों के झुंड के, जिसे ऋषि वैली के बच्चे 'उदय रॉक' कहते थे, नीचे पहुँचे कृष्णमूर्ति का व्यवहार बदल गया। चारों ओर एक आकस्मिक ठहराव सा आ गया और जब मैंने पीछे मुड़ कर देखा तो पाया कि कृष्णजी का तनाव, उनकी बेचैनी जाती रही है; वह फिर अपने

---

25. आर. एस. संथानम मद्रास के एक व्यवसायी थे। उनकी पत्नी पद्मा के.एफ.आई. की ट्रस्टी थी और चेन्नई में के.एफ.आई. के विद्यालय 'द स्कूल' में सक्रिय रहीं।

शांत और आत्मस्थ रूप में लौट आए थे। अगले ही पल वह मुड़े और उन्होंने फ्रीडरिश को गले लगाया और उन्हें अपना दोस्त कह कर पुकारा। बाद में उसी शाम उनके शयनकक्ष में मैं उन्हें 'शुभरात्रि' कहने गई और उनसे पूछा, ''आज शाम को आपको कुछ हुआ था, नहीं?'' चेहरे पर अपना वही नक़ाब पहने हुए सा भाव लिए, मानो किसी गहरे रहस्य को छुपाए हों, उन्होंने कहा : *अच्छा है जो आपने देख लिया*।

'के' के उस रहस्यमय, नक़ाब पहने हुए से भाव का ज़िक्र मुझे एक अन्य घटना की याद दिलाता है, जो तब घटी थी जब हम वसंत विहार में लोगों से भरे भोजनकक्ष में बैठे थे। कृष्णमूर्ति मेरे सामने बैठे थे जब कि मैं अपने ही ख्यालों में खोया उनकी कमीज़ के चंदन के बने बटनों को देख रहा था। अचानक ही हमारी नज़रें मिलीं। कैसे बयान करूं उस लौ का जो उनकी नज़रों में थी? मानो कोई ज्वालामुखी फट रहा हो। उनका पूरा अस्तित्व अग्निमय हो उठा था। यह बिल्कुल उनके उस चित्रण के समान था जिसमें वह ऋषि वैली में होते सूर्यास्त का वर्णन करते हुए कहते हैं : *आप स्वयं वह प्रकाश बन जाते हैं, वह रौशनी ही आपकी अवस्था होती है, जलती हुई, प्रचंड, विस्फोट जैसी, बिना परछाईं के, बिना किसी मूल से जुड़ी या शब्दों में आबद्ध* ('कृष्णमूर्तीज़ नोटबुक', दिनांक 17 दिसंबर 1961 को की गई प्रविष्टि से उद्धृत)। मैं इस वेग का सामना नहीं कर सका और आखिरकार अपनी आँखें फेर नीचे की ओर देखने लगा। उपस्थित मेहमानों में से शायद किसी का भी ध्यान इस ओर नहीं गया।

ऐसा ही कुछ एक बार ब्रॉकवुड के वेस्ट–विंग की रसोई में खाने की मेज़ पर दो अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में हुआ। उनसे एक असीमित ऊर्जा, एक अपरिमित वेग प्रवाहित हो रहा था। क्या वह हमें कुछ दिखाना चाहते थे? ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह कह रहे हों : *जागो* ! *इस तरफ आ जाओ* ! उस भाव में एक आग्रह था, एक प्रेरणा थी। वह हमें कहा करते थे *चलो* ! *बढ़ो* ! और कभी–कभी साथ सैर करते समय वह मेरे कंधे पर हाथ रख आगे को धकेलते जिसका अर्थ शायद यही था कि चलो, आगे बढ़ो।

ब्रॉकवुड, ओहाइ और अन्य भारतीय स्कूलों के शिक्षकों के ऋषि वैली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय शिक्षक सम्मेलन में पहुंचने पर ऐसा हुआ कि 'के' कुछ सभाओं में भाग लेने की स्थिति में थे। उनका सक्रिय रूप से इस सम्मेलन में भाग लेना तय नहीं हुआ था, किंतु उनकी सहभागिता से चर्चाओं का स्तर और ऊँचा हो गया। ये चर्चाएँ भी *द फ्यूचर इज़ नाउ* में संकलित हैं।

ऋषि वैली में अपने अंतिम दो वर्षों के प्रवास के दौरान 'के' ने वहाँ पढ़ रहे कई प्यारे–प्यारे बच्चों से बातचीत की; ये चर्चाएँ वीडियो–टेप पर उपलब्ध हैं। ऐसी ही एक आखिरी चर्चा के बाद कृष्णमूर्ति ने मुझसे पूछा : *आपने इन बालकों और बालिकाओं को देखा ? इन्हें भी भेड़ियों के सामने फेंक दिया जाएगा।* विद्यार्थियों के साथ उनके संबंध और शिक्षा पर उनके विचारों ने मुझे हमेशा ही विस्मित किया है। उनके द्वारा स्कूलों को लिखे पत्रों *(लैटर्ज़ टू द स्कूल्ज़)* से उद्धृत निम्नलिखित लेख छोटे बच्चों की शिक्षा के विषय पर उनके विचारों को दर्शाता है।

छोटे बच्चों की शिक्षा

जो बच्चे अभी बहुत छोटे हैं उनके विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि मानसिक दबावों और परेशानियों से मुक्त रहने में उनकी मदद की जाए। आज छोटे–छोटे बच्चों को अत्यंत जटिल बौद्धिक ज्ञान दिया जा रहा है; उनकी पढ़ाई समय के साथ–साथ और अधिक तकनीकी होती जी रही है; उन्हें अधिकाधिक अमूर्त जानकारी प्रदान की जा रही है; ज्ञान के विविध रूप उनके मस्तिष्क पर थोपे जा रहे हैं और इस तरह बचपन से ही उन्हें संस्कारबद्ध किया जा रहा है। जबकि हमारा उद्देश्य यह है कि हम इन नन्हे–मुन्नों की मदद करें जिससे उन्हें किसी प्रकार की मानसिक समस्या का सामना ही न करना पड़े, वे भय, चिंता, निर्दयता से मुक्त रहें, उनमें परवाह, उदारता और स्नेह की भावना हो। इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चा पढ़ना, लिखना वगैरह सीखे ही नहीं, बल्कि ज़ोर जानकारियां हासिल करने पर न होकर मानस की स्वतंत्रता पर हो, हालाँकि जानकारियां भी ज़रूरी हैं।

स्कूलों के नाम पत्र (लैटर्ज़ टू द स्कूल्ज़), खंड 1, पृ. 103–104 से उद्धृत

© 1981 कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड

एक बार हम कृष्णमूर्ति के साथ ऋषि वैली में वयस्कों के लिए स्टडी सेंटर की स्थापना के विषय में बात कर रहे थे। तभी अचानक एक पक्षी खिड़की के पास आया और

ज़ोर–ज़ोर से खिड़की के कांच पर चोंच मारने लगा; ज़ाहिर है वह अंदर आना चाहता था। वह एक हुदहुद पक्षी था, और कमरे में कई अनजाने लोगों को देख कर कुछ विक्षुब्ध लग रहा था। 'के' ने उसे अपनी बातों से शांत किया: *ठीक है, ठीक है, मैं यहीं हूँ*! राधिका ने मुझे बताया कि वह अकसर उस पक्षी से बात किया करते थे। एक बार जब वह उनके कमरे में गईं तब पहले तो उन्हें लगा कि 'के' से मिलने शायद कोई आया है। वह उस पक्षी से कह रहे थे : *तुम चाहो तो अपने बच्चों को यहाँ ला सकती हो, तुम्हारा स्वागत है। किंतु उन्हें शायद यहाँ अच्छा नहीं लगेगा, क्योंकि जब मैं यहाँ से चला जाऊँगा तो ये लोग खिड़कियां बंद कर देंगे और तुम्हें बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलेगा*।

ऋषि वैली की अपनी यात्रा की एक और बात मुझे याद है, एक किसान बैलगाड़ी लिए जा रहा था और उसने मुझे उसके पीछे चढ़ जाने का निमंत्रण दिया। वह एक कठिन सवारी थी, बिना शॉक एबसार्बर्स के, और मैंने गाड़ी को एक तरफ से कस के पकड़ रखा था। मुझे डर था कि यदि बैलों ने तेज़ी पकड़ी तो मैं हवा में उड़ता नज़र आऊंगा। हम पुराने गेस्ट हाउस में 'के' के कमरे के सामने से निकले और मैंने उनकी खिड़की की तरफ देखा। मुझे लगा कि वह वहाँ नहीं हैं पर बाद में उन्होंने मुझसे कहा : *आपने बैलगाड़ी को सचमुच कसकर पकड़ा हुआ था*। मैंने कल्पना की कि ज़रूर उन्होंने मुझे अपनी 'छठी इंद्रिय' से देखा होगा।

'के' के मद्रास लौट जाने के पश्चात मैं ब्रॉकवुड और ओहाइ से आए कुछ अध्यापकों के साथ बंगलौर में स्थित वैली स्कूल गया।

'के' के स्वास्थ्य को देखते हुए मेरे लिए यह समझ पाना कठिन हो रहा था कि वह मुंबई में एक के बाद एक सार्वजनिक वार्ताओं में हज़ारों लोगों को कैसे संबोधित कर पाएंगे। मुझे बेहद तसल्ली हुई जब उन्होंने ये वार्ताएं रद्द करवा दीं। मैं एक और हफ्ते के लिए मद्रास लौटा और दो–चार बार अड्यार समुद्रतट के किनारे सैर करने उनके साथ गया।

समुद्रतट पर 'के' के साथ अपनी एक आखिरी सैर के बाद हम राधा बर्निअर के घर बस पहुंचे ही थे जब उन्होंने अचानक मेरी बांह पकड़ी और हम तेज़ी से घर के करीब से गुज़रे; उनका ऐसा करना यह इशारा करता सा लग रहा था मानो वह कह रहे हों: *चलो*! *जल्दी करो* ! *सोओ नहीं* ! *बेजान मत रहो* ! जैसा कि वह कभी–कभी वार्ताओं में लोगों को संबोधित करते हुए भी कहते थे। इससे मुझे ब्रॉकवुड में हमारी एक सैर याद आती है जब हम अपने जूतों में तस्मे बांध कर उठ रहे थे; मैंने उन्हें बताया कि कैसे मेरी दादी

पाइन कॉटेज के परिसर में पैपर वृक्ष के पास रखा एक पारंपरिक भारतीय शिल्प : नंदी। एक बार मैंने इसके सिर पर फूल चढ़े हुए देखे और मैंने मैरी ज़िंबालिस्ट से पूछा कि क्या भारतीय लोगों का आना हुआ था। मैरी ने बताया कि 'के' ने उन्हें कहा था कि कभी–कभी इस पर फूल चढ़ा दिया करें, इसे अच्छा लगेगा।
कुछ साल पहले पैपर वृक्ष गिर गया था, लेकिन उसके विशाल तने से नये अंकुर निकल आये और यह फिर से हरा–भरा और सुंदर हो गया।

कुछ देर विश्राम के पश्चात कहा करती थी "दबू ले मोरी!" (उठो मृत लोगो!)। यह सुन कर उन्हें बहुत मज़ा आया।

जल्द ही कृष्णमूर्ति ने ओहाइ जाने का निर्णय कर लिया। वहाँ पाइन कॉटेज में रह कर चिकित्सा कराना आसान था, और वहाँ उन्हें अधिक शांत माहौल भी मिल पाएगा। स्कॉट फोर्ब्स, जिन्होंने ऋषि वैली से मद्रास उनके साथ सफर किया था, प्रशांत महासागर के पार उनकी इस यात्रा पर उनके साथ गए।

यूरोप लौटने के पश्चात मैंने तीन हफ्ते स्विट्ज़रलैंड के पर्वतों में बिताए और फिर मैं सीधे ओहाइ, कैलीफोर्निया के लिए रवाना हो गया।

ओहाइ में वापसी

... कोई हमें मिलता है जिसमें यह जानने की असाधारण उत्सुकता है कि 'के' जैसा व्यक्ति अपना जीवन कैसे व्यतीत करता होगा।

हालाँकि 'के' ने ये शब्द मुझसे नहीं कहे, किंतु मुझे यक़ीन है कि इन्हें कहते हुए उनके मन में मेरा ही विचार था। उनकी जीवन–गाथा में मुझे उतनी रुचि नहीं थी (कि कैसे थियोसोफिस्टों ने एक उपेक्षित बालक को खोज निकाला, जो आगे चल कर विश्वशिक्षक के रूप में सामने आया) जितनी कि यह जानने की उत्सुकता थी कि यह असाधारण व्यक्ति जो लोगों के दिलों में अपने प्रति इतने आदर और सम्मान की भावना जगाता है वह वास्तव में कैसा जीवन जीता है, उसकी दिनचर्या क्या है। और हालात कुछ ऐसे बने कि मेरी न केवल यह उत्सुकता शांत हुई बल्कि उससे कहीं अधिक अनुभव करने का अवसर मुझे मिला।

फरवरी 1986 में 90 वर्ष की आयु में कृष्णमूर्ति अपने असाधारण जीवनकाल के अंतिम क्षणों में ओहाइ लौटे।

अपने आख़िरी समय में दुनिया भर से उनके पास पत्र आते थे और वह उन्हें सुनते थे। मुझे यह देखकर बेहद हैरानी होती थी कि मृत्यु की कगार पर खड़े एक व्यक्ति के सामने किस तरह की तुच्छ और मामूली बातें प्रस्तुत की जा रही थीं।

कृष्णमूर्ति ने कुछ महीनों पहले ही मुझसे कहा था कि जल्द ही उनके जीवनकाल का अंत होने वाला है; यही बात उन्होंने एर्ना लिलीफैल्ट से भी कही थी। सभी लोग उनके फिर से स्वस्थ हो जाने की उम्मीद कर रहे थे। वास्तव में, चालीस वर्ष पहले ओहाइ में वह खतरनाक हद तक बीमार पड़ गए थे, इस कदर कि डॉक्टरों ने बस जवाब ही दे दिया था। किंतु कैलर नाम के एक होमियोपैथी के डॉक्टर ने पूर्ण समर्पणभाव से पूरे एक वर्ष उनकी देखभाल की, और बेशक वह ठीक भी हो गए। (यह जानकारी मुझे ओहाइ में श्रीमती कैलर ने दी थी।)

'के' की मृत्यु का एक बहुत ही हृदयस्पर्शी उल्लेख डा. डॉएच्च द्वारा, जो कि उस समय उनके डॉक्टर थे, एवलिन ब्लाउ[26] की पुस्तक *'कृष्णमूर्ति : 100 यिअर्स'* में दिया गया है। अपने अंतिम क्षणों तक कृष्णमूर्ति का सरोकार मानवजाति की, एवं उन लोगों की भलाई से रहा जो उनके निकट संपर्क में आए थे—औरों का सबसे ज़्यादा ख्याल था उन्हें।

कृष्णमूर्ति जब मृत्युशय्या पर थे तब ओक ग्रोव स्कूल के एक छात्र ने उन्हें एक पत्र लिखा था। 'के' ने उस पत्र को पढ़वाया और फिर उस विद्यार्थी को अपना धन्यवाद देने की इच्छा व्यक्त की। अत्यंत पीड़ा में व शारीरिक रूप से बेहद कमज़ोर होने के बावजूद भी वह उस बात को भूले नहीं और बाद में उन्होंने दो बार पूछा कि क्या उनका धन्यवाद उस छात्र तक पहुँचा दिया गया।

इन परिस्थितियों में भी वह हँसना नहीं भूले थे। जब उन्होंने मेरे ओहाइ वाले घर के बारे में पूछा और मैंने उन्हें बताया कि उसके पुनर्निर्माण का कार्य अभी तक चल ही रहा है, तो वह इतने ज़ोर का ठहाका मार कर हँसे कि मुझे डर लगा कि कहीं उनकी नाक से होकर जाने वाली और उनके शरीर में खुराक पहुँचा रही नलियां ही उन्हें चोट न पहुँचा दें।

'के' अब काफ़ी बीमार हो गए थे, और उन्होंने कुछ ट्रस्टियों को अपने पास बुलवा लिया ताकि वह उनके साथ फाउंडेशन से संबंधित अत्यावश्यक विषयों पर बात कर सकें। बेहद कमज़ोरी और पीड़ा के बावजूद उन्होंने उन मित्रों से जो दुनिया भर से एकत्र हुए थे अपने उसी सरल और स्पष्ट ढंग से बात की ('के' के अंतिम दिनों का उल्लेख मैरी लट्यन्स द्वारा लिखित 'के' की जीवनकथा के तीसरे खंड में है)। उन्होंने अपने ट्रस्टियों को उनके आपसी सहयोग का दायित्व सौंपा। उन्होंने कहा कि फाउंडेशन के सेक्रेटरी और अध्यक्ष को किसी अन्य कार्य की ज़िम्मेदारी नहीं लेनी चाहिए। उन्होंने कुछ ऐसे व्यक्तियों का समूह बनाने की संभावना के विषय में चर्चा की जिनका मुख्य कार्य होगा यात्रा करना और इस पूरी कार्यव्यवस्था को संगठित रखना।

एक बार ब्रॉकवुड में जब हम सैर से वापस आ रहे थे तब उन्होंने मुझसे कहा था : *इस जगह को हमेशा ऐसा ही रहना चाहिए*। और जब उनसे पूछा गया कि उनकी मृत्यु

---

26. एवलिन ब्लाउ के.एफ.आइ की ट्रस्टी हैं। *'कृष्णमूर्ति : 100 यिअर्स'* के अतिरिक्त उन्होंने मार्क एडवर्ड्स के साथ मिल कर *'ऑल द मार्वलस अर्थ'* का संपादन कार्य किया है, और 'के' के जीवन व उनकी शिक्षाओं पर कई वीडियो व फिल्में भी बनाई हैं जैसे *'विद ए साइलैंट माइंड'* और *'द चैलेंज ऑफ चेंज'*।

के पश्चात हमें क्या करना चाहिए तब उन्होंने कहा था : *स्थान की देखभाल करें और शिक्षाओं को विशुद्ध रखें*।

अपने आखिरी क्षण तक उनके मन–मस्तिष्क में स्पष्टता थी। मैं उनसे उनकी मृत्यु के तीन दिन पहले मिला। उन्होंने मुझसे कहा : *मेरा जाने का समय हो गया है, आप समझ रहे हैं न ?* मुझसे कहे गए उनके ये आखिरी शब्द थे।

'के' के देहांत की रात, मुझे शांति की एक लहर सी बहती हुई महसूस हुई—चाँद की चाँदनी से उज्ज्वल वादी को अपने आप में समेटती हुई।

'कृष्णमूर्ति के साथ बिताए समय' के अपने इस वर्णन का अंत मैं *'ऑन लिविंग एंड डाइंग'* से लिए गए इस उद्धरण से करना चाहूँगा, जो कि 7 मार्च 1962 को कृष्णमूर्ति द्वारा मुंबई में संबोधित एक वार्ता से लिया गया है :

एक अद्‌भुत रिक्तता से भरा मन

मृत्यु तो विनाश है। यह निर्णीत है; आप उससे तर्क–वितर्क नहीं कर सकते। आप यह नहीं कह सकते, "अभी नहीं, कुछ दिन और इंतज़ार करो"। आप उससे बहस नहीं कर सकते; उसके सामने दलीलें पेश नहीं कर सकते; वह निर्णायक है; अपरिवर्तनशील है। और हम कभी भी किसी निर्णीत, निश्चित वस्तु का सीधा सामना नहीं करते। हम हमेशा उससे निपटने का टेढ़ा रास्ता अपनाते हैं, और इसी कारण हम मृत्यु से डरते हैं। हम नयी कल्पनाएं, उम्मीदें और भय गढ़ते हैं, और अनेक मान्यताओं की आड़ लेते हैं जैसे "हमारा मृतोत्थान होगा, हम फिर से जन्म लेंगे"—ये सब मन की चालाकियां हैं, निरंतरता की उसकी चाह है, वह निरंतरता जो समय से बंधी है, जो तथ्य नहीं है, केवल सोच की उपज है। देखिए, जब मैं मृत्यु के विषय में बात कर रहा हूँ तब मैं आपकी या अपनी मृत्यु की बात नहीं कर रहा—मैं तो मृत्यु अर्थात उस असाधारण घटना की बात कर रहा हूँ।

अतः जब हम मृत्यु की चर्चा कर रहे हैं तो हम आपकी या अपनी मृत्यु की चर्चा नहीं कर रहे हैं। इस बात का कोई महत्त्व नहीं है कि आपकी मौत होती है या मेरी। हमें मरना

तो है ही, चाहे सुखी–सुखी चाहे दुखी होकर—अब चाहे हम अपने जीवन को पूरी तरह, भरपूर, हर दृष्टि से, अपने पूरे अस्तित्व के साथ स्वस्थ, जीवंतता से जीकर प्रसन्नतापूर्वक मरें अथवा व्यथित–संतप्त लोगों की तरह बुढ़ापे से अपंग होकर, कुंठित, सुख–समृद्धि की अनुभूति से एकदम वंचित, विराटता में एक भी पल ठहरे बिना, दुख में डूबे–डूबे ही मर जायें। देखिए, मैं चर्चा कर रहा हूँ मृत्यु की, किसी खास व्यक्ति की मृत्यु की नहीं।

यदि आपने अपने अंदर हर एक चीज़ को—प्रत्येक मनोवैज्ञानिक जड़ को, आशा, हताशा, अपराध–बोध, व्यग्रता, सफलता, आसक्ति—इन सभी को काटकर अलग कर दिया है, तो इस शल्यक्रिया से, समाज की संपूर्ण संरचना को नकार देने से, बिना यह जाने कि इस शल्यक्रिया के पूरा होने के बाद आपका क्या होगा—इस पूरे नकार–इनकार में से वह ऊर्जा उभर कर आयेगी जो उसका सामना कर पाने में सक्षम है जिसे आप मृत्यु कहते हैं।

देखिये, हममें प्रेम नहीं है। प्रेम तो केवल तब आ पाता है जब कुछ रहता ही नहीं, जब आप संसार का पूरी तरह निषेध कर देते हैं—'संसार' कहे जाने वाले इस बड़े विस्तार का नहीं, बल्कि बस अपने संसार का, उस छोटे से संसार का जिसमें आप जीते हैं—परिवार, आसक्ति, कलह, प्रभुता, सफलता, प्रत्याशा, अपराध–बोध, आज्ञाकारिता, आपके देवी–देवता, आपकी पौराणिक गाथाएं। यदि इस पूरे संसार को आप नकार देते हैं तो सचमुच कुछ शेष नहीं रहता—न कोई ईश्वर, न कोई आशा–निराशा, और कोई खोज भी नहीं—कुछ भी नहीं। तब उस विशद शून्यता में से प्रेम का प्रादुर्भाव होता है जो ऐसा अद्‌भुत यथार्थ है, ऐसा सच है, जो उस मन की माया से नहीं उपजा है जो सेक्स व कामना के माध्यम से परिवार के साथ निरंतरता बनाये रखने में लगा रहता है।

और यदि आपमें प्रेम नहीं है जो कि 'अज्ञात' ही है तो आप चाहे जो कर लें इस संसार की दुर्दशा में कोई तबदीली नहीं आने वाली है। यदि आप ज्ञात का पूरी तरह निषेध कर दें, अपने ज्ञान को, अपने अनुभवों को पूरी तरह नकार दें—तकनीकी ज्ञान को नहीं बल्कि अपनी महत्त्वाकांक्षाओं, अपने अनुभवों के संग्रह, अपने परिवार को—संपूर्ण ज्ञात को पूरी तरह नकार दें, पोंछ डालें, मर जायें उस सब के प्रति, तो आप पाएंगे कि आपके मन में उस अनूठी रिक्तता का आगमन होता है, खूब सारा आकाश उसमें उपलब्ध हो जाता है। और, केवल यही वह आकाश–अवकाश है जिसमें सृजन संभव है—बच्चों का

आर्य विहार के पास, ओहाइ, कैलीफोर्निया

सृजन या कैनवस पर किसी चित्र का सृजन नहीं, बल्कि वह सृजन जो समग्र ऊर्जा है, अविज्ञेय है। परंतु वहाँ तक आने के लिये आपको उस सबसे मुँह मोड़ लेना होगा जो आपको ज्ञात है। और इसी परित्याग में, इसी मरने में है अपार सौंदर्य, अक्षय जीवन–ऊर्जा।

'ऑन लिविंग एंड डाइंग', पृ. 100–02 से उद्धृत

© 1992 कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड
एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका

पुनश्च

कृष्णमूर्ति का देहांत हुए अठारह [अब पच्चीस] वर्ष हो गए हैं। 1995 में फाउंडेशनों ने उनके जन्मदिवस की सौवीं वर्षगांठ मनाई; यह उनके कार्य को और बड़े पैमाने पर लोगों तक पहुँचाने का एक अवसर था।

चेन्नई में स्थित वसंत विहार में, जो कि इंडियन फाउंडेशन का मुख्य केंद्र है, एक गैदरिंग का आयोजन किया गया जिसमें कई हज़ार लोगों ने भाग लिया और जिसका उद्घाटन दलाई लामा ने किया। वक्ताओं में पुपुल जयकर और भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरमण भी शामिल थे।

ऐसे ही एक विशाल समारोह का आयोजन ओहाइ, कैलीफोर्निया में भी किया गया था, जहाँ अमेरिकन फाउंडेशन और ओक ग्रोव स्कूल का केंद्र है। मेक्सिको, संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस के विश्वविद्यालयों में भी कृष्णमूर्ति पर कई सम्मेलन आयोजित किए गए। कई नयी पुस्तकें प्रकाशित की गईं जिनमें से एक है एवलिन ब्लाउ की बहुसमावेशी कृति *कृष्णमूर्ति : 100 यिअर्स*।

अपने जीवनकाल में 'के' ने अपने आस–पास मौजूद लोगों से अकसर यह प्रश्न किया: *जब 'के' नहीं रहेंगे तब आप क्या करेंगे ?* कई बार वह इस ओर ध्यान दिलाते कि गुरुओं के इर्द–गिर्द बने समूहों की प्रवृत्ति होती है कि गुरु की मृत्यु के चालीस वर्षों के अंदर वे बिखर जाते हैं। उन्होंने बहुत बार उन संगठनों के खतरों और खामियों को भी उजागर किया जो किसी खास गुरु या मार्गदर्शक का अनुगमन करते हैं और पद–प्रतिष्ठा पर आधारित किसी ढांचे या व्यवस्था को बनाए रखते हैं।

'के' के प्रश्न के उत्तर में जब कुछ ट्रस्टी यह कहते कि हम शिक्षाओं की रक्षा करेंगे और उन्हें आगे लोगों तक पहुँचाएंगे तब 'के' कहते : *आपको उन शिक्षाओं को स्वयं जीना है, तभी वे संसार पर कोई प्रभाव डाल सकेंगी। शिक्षाएँ अपने आप में सुरक्षित हैं, उन्हें बाह्य सुरक्षा की आवश्यकता नहीं।*

विश्व में चार कृष्णमूर्ति फाउंडेशन हैं और अनेक देशों में फैली चालीस से भी अधिक समितियां हैं, सभी कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के संरक्षण और संसार को उनके सौंदर्य और

महत्त्व से अवगत कराने की दिशा में कार्यरत हैं। कई वर्षों तक मैं उन व्यक्तियों के जितना हो सके निरंतर संपर्क में रहा जो इन समूहों में सक्रिय थे और उनमें से कई लोगों से मिलने भी जाता रहा। कुछ से तो मेरी भेंट बहुधा होती रही। 1992 में मैंने ब्रॉकवुड के पूर्व स्टाफ के लोगों के साथ कार्य करना आरंभ किया। शुरुआत में मंशा यह थी कि स्कूल और फाउंडेशन के साथ मेरा संवाद और भी सार्थक हो सके। बाद में मैं और अधिक गहराई से इस कार्य से जुड़ गया ताकि अन्य स्कूलों और फाउंडेशनों के साथ भी मेरे प्रयास कारगर सिद्ध हो सकें। अब हम सात लोग हैं जो इस प्रकार कार्य कर रहे हैं। हमारे समूह का नाम कृष्णमूर्ति लिंक इंटरनेशनल (के.एल.आई.) है, जो हमारे प्रकाशन द लिंक के नाम पर आधारित है।

फाउंडेशनों द्वारा स्कूलों, स्टडी सेंटरों और अभिलेखागारों की देखरेख व संभाल जारी है। इनका काम है बुलेटिन और पुस्तकें प्रकाशित करना, ऑडियो और वीडियो टेप्स, सीडी और डीवीडी, वेबसाइट आदि का निर्माण करना और कई भाषाओं में इन सब के अनुवाद के कार्य की व्यवस्था करना। फाउंडेशन के कार्यों में समितियां उनकी मदद करती हैं; वे अनुवाद करने में और विविध माध्यमों में प्रकाशित कार्यों का वितरण करने में उनकी सहायता करती हैं।

फाउंडेशनों का एक महत्त्वपूर्ण नया प्रयास है *द कंप्लीट टीचिंग्स ऑफ जे. कृष्णमूर्ति* का संपादन व प्रकाशन—यह एक दीर्घावधि योजना है जिसका उद्देश्य है कृष्णमूर्ति द्वारा संबोधित जनवार्ताओं, प्रश्नोत्तर गोष्ठियों, आमंत्रित सहभागियों के साथ संवादों, छोटे और बड़े समूहों में की गई बातचीत, रेडियो और टेलीविजन पर दिए गए साक्षात्कारों, शिक्षा पर उनके लेखों और जनवार्ताओं, सेमिनारों, व्याख्यानों, संक्षिप्त विवरणों और कविताओं आदि का पिचहत्तर खंडों में प्रकाशन।

'के' चाहते थे कि फाउंडेशनों और स्कूलों में एकत्व का भाव हो और वे उसी भावना के साथ एक–संग कार्य करें। यह बात उन लोगों को संप्रेषित करना, जिन्होंने उनके लंबे जीवनकाल में उनके साथ कार्य किया, उनका एक अहम सरोकार था।

उनकी मृत्यु के पश्चात इन कई वर्षों में हम विश्व–भर में एक–साथ उस कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं जो कृष्णमूर्ति ने आरंभ किया था।

यह पृथ्वी हमारी है, केवल आपकी या केवल मेरी नहीं

हमें यह प्रश्न ज़रूर पूछना चाहिए कि संसार में इतना सारा विभाजन क्यों है—रूसी, अमेरिकी, ब्रिटिश, फ्रांसीसी, जर्मन आदि के रूप में—मनुष्य–मनुष्य के बीच, जातियों–प्रजातियों के बीच, विचारधाराओं के बीच इतना विभाजन क्यों है? क्यों है यह अलगाव? मनुष्य ने आखिर क्यों धरती को मेरे–तेरे में बांट रखा है? क्या यह इसलिए है कि हम किसी विशेष समूह, विश्वास या आस्था में सुरक्षा की तलाश कर रहे हैं? क्योंकि हम देखते हैं कि धर्मों ने भी मनुष्यों को बांटा है, मनुष्य को मनुष्य के विरुद्ध खड़ा किया है, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि के रूप में—जब कि उधर राष्ट्रवाद अपनी दुर्भाग्यपूर्ण देशभक्ति के साथ बर्बर कबीलावाद का ही परिष्कृत और महिमामंडित रूप बना हुआ है। किसी भी छोटे या बहुत बड़े कबीले में होता क्या है? एक साथ होने की भावना, एक भाषा, एक ही तरह के अंधविश्वास और एक ही तरह का राजनीतिक या धार्मिक ढांचा जिसमें व्यक्ति सुरक्षा और सुख–सुविधा महसूस करता है। इसी सुरक्षा और सुविधा हेतु वह दूसरों को मारने के लिए भी तैयार रहता है—उन दूसरों को जिनकी वही ख़्वाहिशें होती हैं जो उसकी अपनी हैं, यानी सुरक्षित और सुख–सुविधापूर्वक रहने की और किसी चीज़ से अपनी पहचान बनाए रखने की। किसी समूह, झंडे या धार्मिक अनुष्ठान से अपनी पहचान बनाने की यह अदम्य चाहत हमें यह एहसास कराती है कि हमारी भी जड़ें हैं और हम बेघरबार ख़ानाबदोश नहीं हैं। अपनी जड़ों को तलाशने की हमारे अंदर तीव्र लालसा होती है।

इसके अलावा हमने विश्व को आर्थिक ढांचों में बांट रखा है जिसकी अपनी बहुत सारी समस्याएँ हैं। युद्ध का एक बड़ा कारण शायद भारी–भरकम उद्योग भी हैं। जब उद्योग और अर्थव्यवस्था राजनीति के साथ चलते हैं तो उन्हें अपना आर्थिक वर्चस्व बनाए रखने के लिए अनिवार्य रूप से एक अलगावकारी गति कायम रखनी पड़ती है। सभी देश ऐसा कर रहे हैं, छोटे भी और बड़े भी। छोटे देशों को बड़े देश हथियार बेच रहे हैं, कुछ चोरी–छिपे तो कुछ खुले तौर पर। क्या इस सारी दुर्दशा, क्लेश का और हथियारों पर इतनी भारी फिजूलखर्ची का कारण हमारा दंभप्रदर्शन और दूसरों से श्रेष्ठ होने की हमारी ललक नहीं?

यह हमारी, हम सब की धरती है, केवल आपकी, मेरी या किसी और की नहीं। हमें इस पर एक–दूसरे की मदद करते हुए जीना है, न कि एक–दूसरे का विनाश करते हुए। यह रूमानियत से भरी बकवास नहीं, सच्चाई है। मनुष्य ने धरती को इस उम्मीद से बांट रखा है कि एक विशेष दायरे में उसे सुख, शांति और सुरक्षा मिल जायेगी। जब तक एक आमूलचूल परिवर्तन नहीं होता और हम पहले आंतरिक और फिर बाह्य रूप से सारी राष्ट्रीयताओं, विचारधाराओं और धार्मिक बंटवारों को मिटाकर वैश्विक बंधुत्व स्थापित नहीं कर लेते, तब तक हम युद्धों से घिरे रहेंगे। आप जब चाहे क्रोध में अथवा सुनियोजित हत्याओं द्वारा अर्थात युद्ध में किसी को मारते या हानि पहुँचाते हैं, तब आप *स्वयं* का ही विनाश कर रहे होते हैं, क्योंकि आप एक अलग मनुष्य नहीं हैं जो शेष मानवजाति से युद्ध कर रहा हो, बल्कि आप स्वयं ही शेष मानवता हैं।

कृष्णमूर्ति टू हिमसेल्फ, पृ. 59–60 से उद्धृत

© 1987 कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट लिमिटेड

परिशिष्ट

अंग्रेज़ी में कृष्णमूर्ति के कुछ अन्य जीवन वृतांत

Blau, Evelyne
Krishnamurti: 100 Years
(a compilation of many people's recollections)
Stewart, Tabori & Chang, New York, 1995

Field, Sidney
Krishnamurti: The Reluctant Messiah
Paragon House, New York, 1989

Jayakar, Pupul
Krishnamurti: A Biography
Harper & Row, New York, 1986

Krohnen, Michael
The Kitchen Chronicles: 1001 Lunches with J. Krishnamurti
Edwin House, Ojai, 1997

Lutyens, Mary
Krishnamurti: The Years of Awakening
John Murray, London, 1975

Lutyens, Mary
Krishnamurti: The Years of Fulfilment
John Murray, London, 1983

Lutyens, Mary
Krishnamurti: The Open Door
John Murray, London, 1988

Lutyens, Mary
The Life and Death of Krishnamurti
John Murray, London, 1990

Narayan, G.
As the River Joins the Ocean – Reflections about J. Krishnamurti
Edwin House, Ojai, 1998

Patwardhan, Sunanda
A Vision of the Sacred – My Personal Journey with Krishnamurti
Edwin House, Ojai, 1999

Smith, Ingram
The Transparent Mind – A Journey with Krishnamurti
Edwin House, Ojai, 1999